www.thearyasamaj.org

कर्मफल विवरण

(प्रथम भाग)

कर्मफल सिद्धांत सम्बन्धी प्रश्नोत्तर

ज्ञानेश्वरार्यः
एम.कॉम., दर्शनाचार्य

ओ३म्

योगादेव तु कैवल्यम्

प्रकाशक
वानप्रस्थ साधक आश्रम
आर्य वन, रोजड़, (गुजरात)

१९९९२२१

www.thearyasamaj.org

॥ ओ३म् ॥

कर्मफल विवरण

लेखक

ज्ञानेश्वरार्य :

एम.कॉम., दर्शनाचार्य

प्रकाशक

वानप्रस्थ साधक आश्रम

आर्य वन, रोजड़, पो. सागपुर,

जि. साबरकांठा, (गुजरात) ३८३३०७

दूरभाष : (०२७७४) २७७२१७, (०२७७०) २५७२२४, २८७४१७

वानप्रस्थ साधक आश्रम : (०२७७०) २५७२२०, २५७२२३

E-mail : darshanyog@icenet.net

Website : www.darshanyog.org

१११२२२३

www.thearyasamaj.org

मुख्य वितरक

आर्य रणसिंह यादव

द्वारा-डॉ. सद्गुणा आर्या

'सम्यक्',

पत्रा. गांधीग्राम, जूनागढ़ (गुजरात) ३६२००१

प्रकाशन तिथि : मार्गशीर्ष २०६३ वि. / दिसम्बर-२००६ ई.

प्रथम संस्करण : सृष्टि संवत् १,९६,०८,५३,१०७

लागत व्यय : ५/- रुपए

❖ प्राप्ति स्थान ❖

१. **आर्य समाज मन्दिर,** महर्षि दयानन्द मार्ग, रायपुर दरवाजा बाहर, अहमदाबाद-२२ (गुज.)

२. **विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द,** ४४०८, नई सड़क, दिल्ली–६.

३. **आर्य प्रकाशन,** ८१४, कुण्डेवालान, अजमेरी गेट, दिल्ली–६.

४. **आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय,** खर्राघाट, नर्मदापुरम्, होशंगाबाद (म.प्र.) ४६१००१.

५. **चौखम्बा ओरियेन्टालिया,** ९, यु.बी. बंग्लो रोड, पोस्ट बाक्स नं. २२०६, दिल्ली–७.

६. **सर्वोदय साहित्य मंदिर,** रेलवे प्लेटफार्म नं. १, अहमदाबाद.

७. **ऋषि उद्यान,** आना सागर, पुष्कर रोड, अजमेर (राजस्थान)

८. **गुरुकुल आश्रम आमसेना,** खरियार रोड, जि. नवापारा, उडीसा–७६६१०९.

९. **विजय वस्त्र भंडार,** निलंगा, ४१३५२१ (महाराष्ट्र)

१०. **आर्य समाज मन्दिर,** पोरबंदर, राजकोट, भरुच, मोरबी, टंकारा, जूनागढ़, गांधीनगर, आणंद, जामनगर आदि।

वानप्रस्थ साधक आश्रम

आर्य वन, रोजड़, पो. सागपुर, जि. साबरकांठा, (गुजरात) ३८३३०७

दूरभाष : (०२७७४) २७७२१७, (०२७७०) २५७२२४, २८७४१७,

(०२७७०) २५७२२०, २५७२२३

E-mail : darshanyog@icenet.net **Website :** www.darshanyog.org

www.thearyasamaj.org

* प्राक्कथन *

प्रायः ऐसा देखने में आता है कि मनुष्य क्षणिक सुख के लिए लोभवशात्, शीघ्रता में, बिना परिणामों, प्रभावों का विचार किए विवशता के कारण, किसी के दबाव में आकर, न चाहते हुए भी तात्कालिक दण्ड, उपहास, हानि को टालने की दृष्टि से झूठ, छल-कपट, हिंसा, चोरी आदि बुरे कर्मों को कर लेता है। ऐसे कर्मों को कर लेने के पश्चात् ईश्वर की ओर से मन में भय, शंका, लज्जा, अशान्ति, चिन्ता आदि की अनुभूति होने लगती है। व्यक्ति को स्पष्ट ही ऐसा आभास होता है कि मेरे इस अनिष्ट कर्म का दण्ड ईश्वर की ओर से मिलेगा। ऐसी स्थिति में उस दुःखदायी कर्म के फल से बचने के लिए वह उपायों को ढूंढता है कोई दान देता है या यज्ञ करता है, कोई माला फेरता है या जप करता है, कोई कहीं स्नान करता है, पूजा करवाता है, कोई तीर्थ यात्रा करता है, उपवास रखता है इत्यादि। यहाँ तक कि आजकल के तथाकथित पण्डे, पुजारी, गुरु, पुरोहित, बापू, स्वामी, महाराज आदि धर्माधिकारी व्यक्ति भी उन्हें किये गए पापों से बचने के लिए ईश्वर को भोग लगाना, पूजा आराधना करना, बलि चढ़ाना, क्षमा-याचना करना, यज्ञ, दान, तीर्थ, पुण्य आदि उपाय बताते हैं।

अज्ञानी और दुष्टबुद्धिवाले स्वार्थी व्यक्ति स्वेच्छा से स्वयं ही बुरे कर्मों को करते हैं किन्तु उन कर्मों के दुःखदायी फलों से बचने के लिए अन्यों को कारण बताते हैं अथवा कुछ तो सीधे सीधे ईश्वर को ही दोषी बताते हैं। बुरे कर्मों को करके मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर आदि धार्मिक स्थानों पर जाकर कुछ दान-पुण्य करके कर्म फल से बचने का प्रयास करना वैदिक सिद्धान्त नहीं है। वैदिक सिद्धान्त तो यह है कि **"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्"**। अर्थात् किये गए कर्मों का फल तो मनुष्य को अवश्य ही मिलता है।

बुरे कर्मों से बचने का तो यही उपाय है कि स्वाध्याय, सत्संग, शंका-समाधान, चर्चा आदि के द्वारा प्रथम तो अच्छे कर्म कौन से हैं, बुरे कर्म कौन से हैं; यह जानना चाहिए। ज्ञान के पश्चात् अच्छे-बुरे कर्मों को करने-न करने हेतु मन में दृढ़ संकल्प लेना चाहिए और सतत सतर्कतापूर्वक परिणामों, प्रभावों को विचार करते हुए कर्म करने चाहिए। ईश्वर की नित्य

www.thearyasamaj.org

प्रति स्तुति-प्रार्थना-उपासना करके सुबुद्धि, साहस, बल, पराक्रम प्राप्त करके ही कर्मों के विषय में ठीक निर्णय लेना सम्भव है अन्यथा नहीं।

क्रियात्मक योग प्रशिक्षण शिविरों में "ज्ञान-कर्म-उपासना" नाम की कक्षा में कर्म विषयक सैकड़ों प्रश्न शिविरार्थी पूछते रहते हैं, उन्हीं प्रश्नों में से कुछ प्रश्नों को उपस्थित करके इस पुस्तिका में उनका समाधान करने का प्रयास किया है। शेष अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को द्वितीय भाग के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया जायेगा।

इस पुस्तिका के प्रकाशन का कार्य विगत ४-५ वर्षों से अधूरा पड़ा था । इसमें ब्र. सुमेरुप्रसाद जी, ब्र. दिनेशकुमार जी, ब्र. अरुणकुमार जी ब्र. आनन्द कुमार जी आदि अनेक विद्वान् ब्रह्मचारियों ने लेखन, टंकण, संशोधन आदि के कार्यों में सहयोग किया है। विषय बहुत सूक्ष्म तथा दुर्गम है। गुरुदेव पू. स्वामी सत्यपतिजी परिव्राजक के मुखारविन्द से जो सुना और समझा है अपनी तुच्छ बुद्धि से संक्षेप में प्रस्तुत किया है। कर्मफल विषयक सिद्धान्तों में मतभेद संभव है, पुनरपि कोई भी विवेकीजन युक्ति तर्क, प्रमाणों से युक्त, समाधान प्रस्तुत करेंगे तो बुद्धिगम्य होने पर उनको सहर्ष स्वीकार करने में समुद्यत रहेंगे।

ज्ञानेश्वरार्यः
वानप्रस्थ साधक आश्रम

www.thearyasamaj.org

आशीर्वचन

श्री आचार्य ज्ञानेश्वर जी ने कर्मफल-विवरण पुस्तक लिखी है। वे अनेक विषयों के विद्वान् हैं। आचार्य जी मेरे पास लम्बे काल से कर्म-फल के विषय में सुनते-सुनाते आए हैं और हमने परस्पर मिलकर अनेक बार कर्म-फल के अनेक विषयों पर विचार किया है।

मेरा स्वास्थ्य ठीक न होने से मैं इस पुस्तक का अध्ययन नहीं कर पाया हूँ। किन्तु अन्य स्वाध्यायशील सज्जन और विद्वान् इस पुस्तक के अध्ययन से लाभ उठाएं। इसलिए इस पुस्तक के विषय में कुछ शब्द लिख रहा हूँ।

कर्म का विषय अत्यन्त गम्भीर है और इसका जानना-जनाना और पढ़ना-पढ़ाना बहुत आवश्यक है। इसके जानने-जनाने से व्यक्ति स्वयं लाभान्वित होता है और अन्यों को भी लाभ पहुँचाता है।

इसलिए यह मेरी इच्छा है कि इस कर्मफल-विवरण पुस्तक को स्वाध्यायशील और विद्वान् लोग स्वयं पढ़ें और अन्यों को भी पढ़ने की प्रेरणा दें।

स्वामी सत्यपति परिव्राजक
वानप्रस्थ साधक आश्रम
६ दिसम्बर-२००६

www.thearyasamaj.org

विषयानुक्रमणिका

	प्राक्कथन	०३
	आशीर्वचन	०५
	कर्मफल विवरण	०६
	जाति आयु भोग	१०
	कर्म की गतियां	११
प्रश्न	**विषय**	**पृष्ठ**
१	कर्म की परिभाषा...	१३
२	कर्म, क्रिया, प्रवृत्ति, चेष्टा...	१४
३	कर्म के साधन...	१४
४	कर्म के भेद...	१४
५	कर्म का कर्त्ता...	१७
६	कर्म का फल...	१८
७	कृत, कारित, अनुमोदित...	१९
८	मानसिक, वाचनिक, शारीरिक...	२०
९	आठ प्रकार के घातक...	२१
१०	अपने कर्मों का फल दूसरों को...	२१
११	फल की आशा क्यों नहीं...	२३
१२	कर्म करने में ईश्वर की प्रेरणा...	२३
१३	ईश्वर की अपनी ओर से फल...	२४
१४	कर्म का बिना फल के नष्ट हो जाना...	२५
१५	शास्त्रोक्त कर्मों के न करने पर दण्ड...	२६
१६	कर्म का परिणाम प्रभाव...	२७
१७	फल की परिभाषा...	२९
१८	प्रायश्चित्त क्या है...	३०
१९	कर्म का फल कब...	३१
२०	इस जन्म के कर्म इसी जन्म में...	३२
२१	अच्छे कर्म करने वाले को कष्ट...	३३
२२	शुभ कर्म करने वाले दुःखी क्यों...	३४
२३	चोरी करने वाले, रिश्वत लेने वाले...	३५
२४	बिना इच्छा के कर्म होते हैं...	३६
२५	कर्म के अनुरूप फल...	३७
२६	सुख-दुःख अपने कर्मों का फल...	३८
२७	ज्ञान से मुक्ति फिर कर्म की आवश्यकता क्यों...	३९
२८	शुभाशुभ कर्म बराबर...	४०
२९	निष्काम कर्मों का फल...	४१
३०	क्या उपासना कर्म है...	४२

www.thearyasamaj.org

प्रश्न	विषय	पृष्ठ
३१	जीवन मुक्त व्यक्ति के कर्म...	४२
३२	नियत विपाक कर्मों का फल...	४३
३३	जीव फल भोगने में परतंत्र क्यों...	४४
३४	कर्मों का फल जीव स्वयं भी ले सकता है...	४४
३५	कर्मों का फल मिलता ही है तो ईश्वर की उपासना क्यों...	४५
३६	मुक्ति में जीव कर्म करता है...	४५
३७	जीवनमुक्त के मिश्रित कर्म...	४६
३८	दूसरे का दुःख दूर करना ईश्वर की न्याय व्यवस्था...	४६
३९	मनुष्य कितनी अवस्था का होकर कर्म करना प्रारम्भ करता है...	४७
४०	बिना ज्ञान के कर्म...	४८
४१	बिना ज्ञान के कर्मों का फल होता है...	४८
४२	क्या जीव कर्म करते हुवे थक जाता है...	४९
४३	सारे कर्मों का फल सम्भव है...	४९
४४	पशु-पक्षी योनि में भी कर्म होते हैं...	४९
४५	वृक्ष, लता, गुल्मादि में भी कर्म होते हैं...	४९
४६	पशु योनि से मनुष्य योनि...	५१
४७	कुदिन और सुदिन...	५२
४८	कमाने वाला दोषी या खाने वाले भी...	५३
४९	नये कर्मों का पुराने कर्मों पर प्रभाव...	५३
५०	ईश्वर बिना ही कर्मों के सुख-दुःख...	५४
५१	संकट काल में की गयी प्रार्थना...	५४
५२	निष्काम कर्म करने की विधि...	५५
५३	नास्तिक व्यक्ति निष्काम कर्म...	५६
५४	कर्म स्वयं ही फल दे सकता है...	५७
६५	उपयोगितावाद क्या है...	५७
५६	हिंसा, झूठ आदि से लाभ...	५८
५७	समाज में चोरी करने वाले बच जाते हैं...	५८
५८	भाग्य और पुरुषार्थ में भेद...	५९
५९	परिस्थिति विशेष में झूठ...	६०
६०	घर का स्वामी हिंसा...	६०
६१	झूठ बोलकर प्राण बचाना...	६०
६२	झूठ बोलना पुण्य हो सकता है...	६१
६३	ईश्वर अपनी ओर से सुख दुःख...	६१
६४	गर्भपात जीव के कर्मों का फल है या माता-पिता का...	६२
६५	जो कुछ हो रहा है वह ईश्वर की इच्छा से ही हो रहा है...	६२
	कर्म सिद्धान्त विष..क सूक्तियाँ...	६४

✻✻✻✻✻✻✻✻

www.thearyasamaj.org

कर्मफल विवरण

संपादक - ज्ञानेश्वरार्य
दर्शन योग महाविद्यालय,
आर्य वन, रोजड़,
सागपुर, (साबरकांठा)
गुजरात-३८३३०७

(१) नष्ट हो जाना ⟶ इन कर्मों का फल मुक्ति से लौटकर प्राप्त होना अर्थात् वे कर्म मोक्षरूप फल पूरा होने तक नष्ट (लुप्त) रहेंगे ।

(२) साथ मिलकर फल देना
शुभ कर्मों के फल (सुख) के साथ अशुभ कर्मों का फल (दुःख) का भी मिल जाना । अशुभ कर्मों के फल दुःख के साथ शुभ कर्मो का फल, सुख का भी मिल जाना ।

(३) कर्मों के दबे रहने का तात्पर्य -
मृत्यु समय जिस योनि के कर्म अधिक होंगे, वही योनि ईश्वर देगा, अन्य योनियों को प्राप्त कराके फल भुगाने वाले कर्म दबे रहेंगे, जब तक किसी काल में उनकी प्रधानता न हो जाये ।

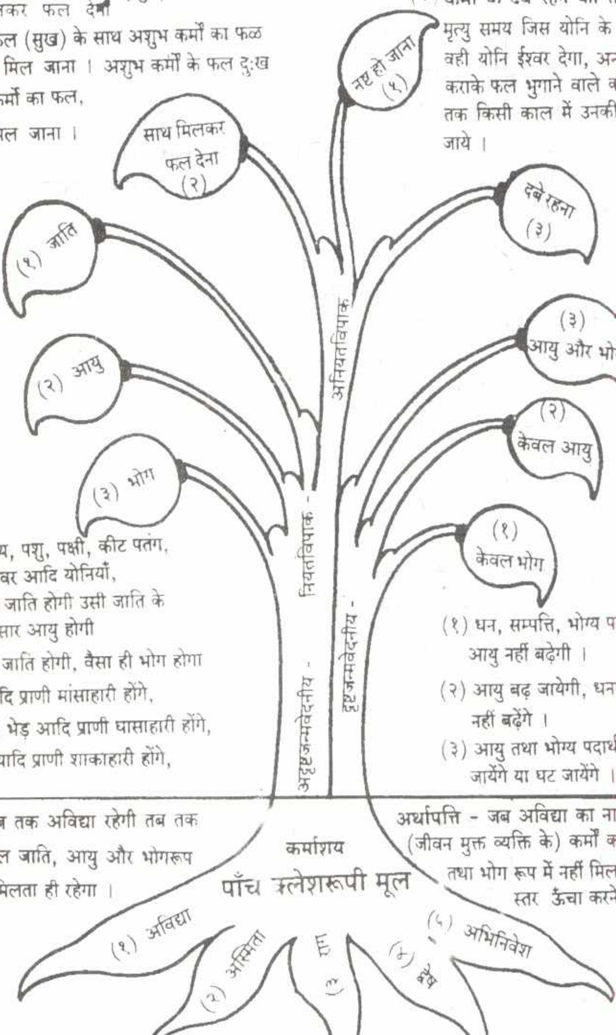

(१) **जाति** - मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट पतंग, स्थावर आदि योनियाँ,
(२) **आयु** - जैसी जाति होगी उसी जाति के अनुसार आयु होगी
(३) **भोग** - जैसी जाति होगी, वैसा ही भोग होगा
अर्थात् - सिंहादि प्राणी मांसाहारी होंगे, गाय, भेड़ आदि प्राणी घासाहारी होंगे, मनुष्यादि प्राणी शाकाहारी होंगे,

(१) धन, सम्पत्ति, भोग्य पदार्थ बढ़ जायेंगे, आयु नहीं बढ़ेगी ।
(२) आयु बढ़ जायेगी, धनादि भोग्य पदार्थ नहीं बढ़ेंगे ।
(३) आयु तथा भोग्य पदार्थ दोनों ही बढ़ जायेंगे या घट जायेंगे ।

सूत्रार्थ = जब तक अविद्या रहेगी तब तक कर्मों का फल जाति, आयु और भोगरूप में निरन्तर मिलता ही रहेगा ।

अर्थापत्ति - जब अविद्या का नाश हो जाता है तब (जीवन मुक्त व्यक्ति के) कर्मों का फल जाति, आयु तथा भोग रूप में नहीं मिलता वे कर्म मुक्ति का स्तर ऊंचा करने वाले होते हैं ।

प्रमाण ⟶

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्ट जन्मवेदनीयः । योगदर्शन-२-१२

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः । योगदर्शन-२-१३

www.thearyasamaj.org

कर्मफल विवरण

कर्मों का फल कब, कैसा, कितना मिलता है; यह जिज्ञासा सभी धार्मिक व्यक्तियों के मन में होती है। कर्मफल देने का कार्य मुख्य रूप से ईश्वर द्वारा संचालित और नियन्त्रित है। वही इसके पूरे विधान को जानता है। मनुष्य इस विधान को कम अंशों में और मोटे तौर पर ही जान पाया है क्यों कि उसका सामर्थ्य ही इतना है। ऋषियों ने अपने ग्रन्थों में कर्मफल की कुछ मुख्य-मुख्य महत्वपूर्ण बातों का वर्णन किया है। उन्हें इस लेख में और सम्बन्धित चित्र (Chart) में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

कर्मफल सदा कर्मों के अनुसार मिलते हैं। फल की दृष्टि से कर्म दो प्रकार के होते हैं। **१. सकाम कर्म, २. निष्काम कर्म।** सकाम कर्म उन कर्मों को कहते हैं जो लौकिक फल (धन, पुत्र, यश आदि) को प्राप्त करने की इच्छा से किए जाते हैं। तथा निष्काम कर्म वे होते हैं जो लौकिक फलों को प्राप्त करने के उद्देश्य से न किए जाएँ अपितु ईश्वर अर्थात् मोक्ष प्राप्ति की इच्छा से किए जाएँ।

सकाम कर्म तीन प्रकार के होते हैं- अच्छे, बुरे व मिश्रित कर्म। **अच्छे कर्म-** जैसे सेवा, दान, परोपकार करना आदि। **बुरे कर्म-** जैसे झूठ बोलना, चोरी करना आदि। **मिश्रित कर्म-** जैसे खेती करना आदि। इसमें पाप व पुण्य (कुछ अच्छा कुछ बुरा) दोनों मिले जुले रहते हैं।

निष्काम कर्म सदा अच्छे ही होते हैं, बुरे कभी नहीं होते। सकाम कर्मों का फल अच्छा या बुरा होता है। जिसे इस जीवन में या मरने के बाद मनुष्य, पशु, पक्षी आदि शरीरों में अगले जीवन में जीवित अवस्था में ही भोगा जाता है निष्काम कर्मों का फल ईश्वरीय आनन्द की प्राप्ति के रूप में होता है। जिसे जीवित रहते हुए समाधि अवस्था में व मृत्यु के बाद बिना जन्म लिए मोक्षावस्था में भोगा जाता है।

जो कर्म इसी जन्म में फल देनेवाले होते हैं उन्हें **'दृष्टजन्मवेदनीयः'** कहते हैं। और जो कर्म अगले किसी जन्म में फल देने वाले होते हैं उन्हें **'अदृष्टजन्मवेदनीयः'** कहते हैं। इन सकाम कर्मों से मिलनेवाले फल तीन प्रकार के होते हैं। **१. जाति, २. आयु, ३. भोग।** समस्त कर्मों का समावेश इन तीनों भागों में हो जाता है। जाति अर्थात् मनुष्य, पशु, पक्षी,

www.thearyasamaj.org

कीट, पतंग, वृक्ष, वनस्पति आदि विभिन्न योनियाँ। आयु अर्थात् जन्म से लेके मृत्यु तक के बीच का समय। भोग अर्थात् विभिन्न प्रकार के भोजन, वस्त्र, मकान, यान आदि साधनों की प्राप्ति। जाति, आयु व भोग इन तीनों से जो सुख-दुःख की प्राप्ति होती है कर्मों का वास्तविक फल वही तो है। किन्तु सुख-दुःख रूपी फल का साधन होने के कारण **जाति, आयु, भोग** को फल नाम दे दिया है।

'दृष्टजन्मवेदनीयः' कर्म किसी एक फल = आयु या भोग को देने वाला होता है अथवा आयु व भोग दो फल भी देने वाला होता है।। जैसे उचित आहार-विहार, व्यायाम, ब्रह्मचर्य, निद्रा आदि के सेवन से शरीर की रोगों से रक्षा की जाती है तथा बल, वीर्य, पुष्टि, भोग सामर्थ्य वा आयु को बढ़ाया जा सकता है, जबकि अनुचित आहार-विहार आदि से बल, आयु आदि घट भी जाते हैं।

'दृष्टजन्मवेदनीयः' कर्म 'जाति रूप फल' को देनेवाले नहीं होते हैं क्यों कि जाति (=योनि) तो इस जन्म में मिल ही चुकी है, उसे जीते जी बदला नहीं जा सकता। जैसे मनुष्य शरीर की जगह पशु शरीर बदल लेना। हाँ मरने के बाद तो शरीर बदल सकता है, पर मरने के बाद नई योनि को देनेवाला कर्म **अदृष्टजन्मवेदनीयः** कहा जायेगा न कि **दृष्टजन्मवेदनीयः**।

अदृष्टजन्मवेदनीय कर्म दो प्रकार के होते हैं- **१. नियत विपाक, २. अनियत विपाक।** कर्मों का ऐसा समूह जिसका फल निश्चित हो चुका हो और अगले जन्म में फल देने वाला हो उसे **'नियत विपाक'** कहते हैं। कर्मों का ऐसा समूह जिसका फल किस रूप में कब मिलेगा यह निश्चित न हुआ हो उसे **'अनियत विपाक'** कहते हैं।

कर्मफल को शास्त्र में कमार्शय नाम से कहा गया है। **'नियत विपाक कर्माशय'** के सभी कर्म परस्पर मिलकर (सम्मिश्रित रूप में) अगले जन्म में **जाति, आयु, भोग** प्रदान करते हैं। इन तीनों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से जानने योग्य है।

१.जाति :- इस जन्म में किए गए कर्मों का सबसे महत्वपूर्ण फल अगले जन्म में जाति-शरीर के रूप में मिलता है। मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, स्थावर = वृक्ष के शरीरों की जाति के अन्तर्गत ग्रहण किया है। यह जाति भी अच्छे और निम्न स्तर की होती है।

www.thearyasamaj.org

यथा मनुष्यों में पूर्णांग-विकलांग, सुन्दर-कुरूप, बुद्धिमान-मूर्खादि; पशुओं में गाय, घोड़ा, गधा, सुअर आदि।

२. **आयु** :- नियत विपाक कर्माशय का दूसरा फल आयु अर्थात् जीवन काल के रूप में मिलता है। जैसी जाति (शरीर = योनि) होती है, उसी के अनुसार आयु भी होती है। यथा मनुष्य की आयु सामान्यतः सौ वर्ष, गाय घोड़ा आदि पशुओं की पच्चीस वर्ष, तोता चिड़िया आदि पक्षियों की दो चार वर्ष, मक्खी, मच्छर, भौंरा, तितली आदि कीट पतंगों की दो-चार-छै मास की होती है। मनुष्य अपनी आयु को स्वतन्त्रता से एक सीमा तक घटा बढ़ा सकता है।

३. **भोग** :- नियत विपाक कर्माशय का तीसरा फल भोग (= सुख-दुःख को प्राप्त करानेवाले साधन) के रूप में मिलता है। जैसे जाति (शरीर = योनि) होती है, उसी जाति के अनुसार भोग होते हैं। जैसे मनुष्य अपने शरीर, बुद्धि, मन, इन्द्रिय आदि साधनों से मकान, कार, रेल, हवाई जहाज, मिठाई, पंखा, कूलर आदि साधनों को बनाकर उनके प्रयोग से विशेष सुख भोगता है। किन्तु गाय, भैस, घोड़ा, कुत्ता आदि पशु केवल घास, चारा, रोटी आदि ही खा सकते हैं; कार कोठी नहीं बना सकते। शेर, चीता, भेड़िया आदि हिंसक प्राणी केवल मांस ही खा सकते हैं, वे मिठाई, गाड़ी, मकान, वस्त्र आदि की सुविधाएँ उत्पन्न नहीं कर सकते हैं। जेसा कि पूर्व कहा गया है कि **'नियत विपाक कर्माशय'** से मिली आयु व भोग पर **'दृष्टजन्मवेदनीय कर्माशय'** का प्रभाव पड़ता है, जिससे आयु व भोग घट बढ़ सकते हैं; पर ये एक सीमा तक (उस जाति के अनुरूप सीमा में) ही बढ़ सकते हैं।

अदृष्टजन्मवेदनीय कर्माशय के अन्तर्गत **अनियतविपाक** कर्मों का फल भी जाति, आयु, भोग के रूप में ही मिलता है। परन्तु यह फल कब व किस रूप में मिलता है इसके लिए शास्त्र में तीन स्थितियाँ (गतियाँ) बताई गई हैं। **१. कर्मों का नष्ट हो जाना, २. साथ मिलकर फल देना, ३. दबे रहना।**

१. **प्रथम गति** :- कर्मों का नष्ट हो जाना- वास्तव में विना फल को दिए कर्म कभी भी नष्ट नहीं होते किन्तु यहाँ प्रकरण में नष्ट होने का तात्पर्य वहुत लम्बे काल पर्यन्त लुप्त हो जाना

www.thearyasamaj.org

है। किसी भी जीव के कर्म सर्वांश में कदापि समाप्त नहीं होते। जीव के समान वे भी अनादि अनन्त हैं। चाहे जीव मुक्ति में भी क्यों न चला जावे कुछ न कुछ मात्रा, संख्या में तो रहते ही हैं। अविद्या (राग-द्वेष) के संस्कारों को नष्ट करके जीव मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। जितने कर्मों का फल उसने अब तक भोग लिया है, उनसे अतिरिक्त जो भी कर्म बच जाते हैं वे मुक्ति के काल तक ईश्वर के ज्ञान में बने रहते हैं। इन्हीं बचे कर्मों के आधार पर मुक्तिकाल के पश्चात् जीव को सामान्य मनुष्य का शरीर मिलता है। तब तक ये कर्मफल नहीं देते यही नष्ट होने का अभिप्राय है।

२. **दूसरी गति** :- साथ मिलकर फल देना- अनेक स्थितियों में ईश्वर अच्छे व बुरे कर्मों का फल साथ-साथ भी देता है। अर्थात् अच्छे कर्मों का फल अच्छी जाति, आयु और भोग मिलता है। किन्तु साथ में कुछ अशुभ कर्मों का फल दुःख भी भुगा देता है। इसी प्रकार अशुभ का प्रधान रूपसे निम्न स्तर की जाति-आयु-भोग रूप फल देता है, किन्तु साथ में कुछ शुभ कर्मों का फल सुख भी मिल जाता है। उदाहरण के लिए शुभकर्मों का फल मनुष्य जन्म तो मिला, किन्तु अन्य अशुभकर्मों के कारण उस शरीर को अन्धा, लूला, कोढ़ी बना दिया। दूसरे पक्ष में प्रधानता से अशुभ कर्मों का फल गाय, कुत्ता आदि पशुयोनि रूप में मिला किन्तु कुछ शुभकर्मों के कारण अच्छे देश में अच्छे घर में मिला, परिणाम स्वरूप सेवा, भोजन आदि अच्छे स्तर के मिले।

३. **तीसरी गति** :- कर्मों का दबे रहना- मनुष्य अनेक प्रकार के कर्म करता है, उन सारे कर्मों का फल किसी एक ही योनि- शरीर में मिल जाए यह संभव नहीं है। अतः जिन कर्मों की प्रधानता होती है उसके अनुसार अगला जन्म मिलता है। जिन कर्मों की अप्रधानता रहती है वे कर्म पूर्व संचित कर्मों में जाकर जुड़ जाते हैं और तब तक फल नहीं देते जब तक कि उन्हीं के सदृश किसी मनुष्य शरीर में मुख्य कर्म न कर लिए जाएँ। इस तीसरी स्थिति को कर्मों का दबे रहना नामसे कहा जाता है।

www.thearyasamaj.org

उदाहरण :- किसी मनुष्य ने अपने जीवन में मनुष्य की जाति-आयु-भोग दिलानेवाले कर्मों के साथ कुछ कर्म सुअर की जाति-आयु-भोग दिलानेवाले भी कर दिए। प्रधानता- अधिकता के कारण अगले जन्म में मनुष्य शरीर मिलेगा और सुअर की योनि देनेवाले कर्म तब तक दबे रहेंगे, जब तक कि सुअर की योनि देने वाले कर्मों की प्रधानता न हो जाए।

उपर्युक्त विवरण का सार यह निकला कि इस जन्म में दुःखों से बचने तथा सुख की प्राप्त करने के लिए हमें सदा शुभ कर्म ही करते रहना चाहिए और उनको भी निष्काम भावना से करना चाहिए।

कर्म और कर्मफल के विषय में कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को यहाँ पर प्रस्तुत करने करके उनका संक्षेप में उत्तर देने का प्रयास किया जा रहा है।

प्रश्न १ :- कर्म की परिभाषा क्या है?

उत्तर :- दार्शनिक दृष्टिकोण से सामान्य रूप से कर्म की यह परिभाषा बनाई जा सकती है कि 'सुख की प्राप्ति व दुःख की निवृत्ति' के लिए जीवात्मा शरीर से, वाणी से और मन से जो चेष्टा विशेष करता है उसको 'कर्म' कहते हैं।

शरीर में होने वाली क्रियाओं/चेष्टाओं को हम दो विभागों में बाँट सकते हैं- पहली इच्छापूर्वक चेष्टाएँ, दूसरी अनिच्छापूर्वक चेष्टाएँ । हँसना, बोलना, खाना, चलना, देखना, विचारना आदि क्रियाएँ इच्छापूर्वक चेष्टाओं में आती हैं। इसके विपरीत श्वास-प्रश्वास का चलना, हृदय का धड़कना, रक्त का संचार, डकार, उबासी, जम्हाई, हिचकी, मल-मूत्र का त्याग आदि क्रियाएँ दूसरी कोटि की चेष्टाओं में आती हैं।

मनुष्य का शरीर एक क्षण के लिए भी क्रिया रहित नहीं होता, क्योंकि यह उसका अपना स्वाभाविक धर्म ही है। शरीर में विद्यमान कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ, प्राण, यकृत, प्लीहा आदि असंख्य अवयव/यन्त्र प्रतिक्षण कुछ न कुछ चेष्टा करते ही रहते हैं किन्तु शरीर में होने वाली इन समस्त क्रिया को दार्शनिक दृष्टि से 'कर्म' के अन्तर्गत नहीं ला सकते।

यद्यपि अनैच्छिक क्रियायें शरीर में जीवात्मा के रहने पर ही होती हैं; निर्जीव शरीर में ये नहीं होती। फिर भी इन क्रियाओं को करने के

www.thearyasamaj.org

पीछे जीवात्मा की इच्छामयी प्रेरणा नहीं होती, अपितु स्वतः इन क्रियाओं को बिना ही जीवात्मा की इच्छा के शरीर को जीवित रखने के लिए ईश्वर की व्यवस्था के रूप में घटित होती रहती हैं इसलिए इन्हें कर्म की परिभाषा में नहीं रखा गया है।

प्रश्न २ :- कर्म, क्रिया, प्रवृत्ति, चेष्टा, व्यापार, प्रयत्न ये शब्द पयार्यवाची हैं या भिन्न-भिन्न अर्थ वाले हैं?

उत्तर :- दर्शन शास्त्र में सामान्यतः ये सभी शब्द पर्यायवाची ही हैं, इतना ध्यान देना आवश्यक है कि शरीर में कुछ चेष्टाएँ / क्रियाएँ जीव की अनिच्छापूर्वक होती हैं, उनका कर्ममीमांसा से कोई सम्वन्ध नहीं होता है। वे ईश्वर की व्यवस्था से शरीर की स्थिरता, रक्षा, वृद्धि, ह्रास आदि की दृष्टि से होती हैं।

इन क्रियाओं के पीछे जीवात्मा की इच्छा विशेष कार्य नहीं करती हैं जैसे ईश्वर के बनाए हुए संसार में ग्रह-उपग्रह-नक्षत्रों का घूमना, वायु का चलना, नदियों का बहना, वृक्षों का हिलना क्रियाएँ तो कहलाती हैं किन्तु कर्ममीमांसा में ये क्रियाएँ कर्म की कोटि में नहीं आती हैं।

प्रश्न ३ :- कर्म करने के साधन कितने हैं?

उत्तर :- नेत्रादि ज्ञानेन्द्रियाँ, हस्त-पाद आदि कर्मेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदि अन्तःकरण आदि कर्मों के साधन अनेक बनतें हैं किन्तु इन समस्त कर्मों का आधार शरीर ही रहता है क्योंकि समस्त करण,शरीर रूपी पिण्ड में ही स्थित हैं। ऋषियों ने विशेष लक्षणों के आधार पर कर्म करने के साधनों के तीन वर्ग बना दिए हैं। ये तीन वर्ग हैं- शरीर, वाणी और मन। जीवात्मा शरीर में स्थित होकर जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त जितने भी कर्म करता है वे शरीर, वाणी तथा मन इन तीन साधनों द्वारा ही किये जाते हैं।

प्रश्न ४ :- मनुष्य कितने प्रकार के कर्मों को करता हैं अर्थात् कर्मों के भेद कितने हैं?

उत्तर :- वैसे तो मनुष्य अपने जीवनकाल में शरीर, इन्द्रिय तथा मन से हजारों, लाखों प्रकार के कर्म करता है जिनकी गणना करनी संभव नहीं । पुनरपि अनेक दृष्टिकोण से ऋषियों ने अपने ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न प्रकार से कर्मों के भेद किये हैं, जिनका परिगणन करके संक्षेप में हम यहाँ पर दर्शा रहे हैं -

www.thearyasamaj.org

१. साधनों के आधार पर कर्म के तीन भेद है –

१. मानसिक
२. वाचनिक
३. शारीरिक ।

२.साधनों के आधार पर किये गए तीन भेदों के भी पुनः शुभ-अशुभ प्रकार बताकर २० भेद बताये गए हैं। जिनका विवरण निम्न प्रकार से है –

	शरीर से	वाणी से	मन से
शुभ	१ रक्षा २ दान ३ सेवा	४ सत्य ५ मधुर ६ हितकर ७ स्वाध्याय करना	८ दया ९ अस्पृहा १० आस्तिकता
अशुभ	१ हिंसा २ चोरी ३ व्यभिचार	४ असत्य ५ कठोर ६ अहितकर ७ व्यर्थ बोलना	८ द्रोह ९ स्पृहा १० नास्तिकता

प्रमाण – रागद्वेष अधिकाराच्चाऽसत्येर्ष्यामायालोभादयो दोषा भवन्ति। दोषैः प्रयुक्तः शरीरेण प्रवर्त्तमानो हिंसास्तेयप्रतिषिद्धमैथुनान्याचरति, वाचाऽनृतपरुषसूचनाऽसम्बद्धानि, मनसा परद्रोहं परद्रव्याभीप्सां नास्तिक्यं चेति। सेयं पापात्मिका प्रवृतिरधर्माय। शुभा शरीरेण दानं परित्राणं परिचरणं च, वाचा सत्यं हितं प्रियं स्वाध्यायं चेति, मनसा दयामस्पृहां श्रद्धां चेति। सेयं धर्माय। (न्याय दर्शन १/१/२)

मनुस्मृति के अनुसार मानसिक बुरे कर्म

परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम् ।
वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधंकर्म मानसम् ।। (मनु. १२/५)

अर्थः– मानसिक कर्मों में से तीन मुख्य अधर्म हैं परद्रव्यहरण अथवा चोरी का विचार, लोगों का बुरा चिन्तन करना, मन में द्वेष करना, ईर्ष्या करना तथा मिथ्या निश्चय करना।

मनुस्मृति के अनुसार वाचनिक बुरे कर्म

पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः ।
असंबद्धप्रलापश्च वाङ्मयंस्याच्चतुर्विधम् ।। (मनु. १२/६)

www.thearyasamaj.org

अर्थः- पारुष्य अर्थात् कठोर भाषा, अनृत भाषण अर्थात् झूठ बोलना, पैशुन्यं अर्थात् चुगली करना तथा असंबद्ध प्रलाप अर्थात् जान बूझकर (लांछन या बुराई बनाकर) बात को उड़ाना ये चार वाचनिक अधर्म हैं।

मनुस्मृति के अनुसार शारीरिक बुरे कर्म -

अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः।
परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम्।। (मनु. १२/७)

अर्थः- शारीरिक अधर्म तीन हैं- चोरी, हिंसा अर्थात् सब प्रकार के क्रूर कर्म तथा व्यभिचार आदि कर्म करना।

३.योग दर्शन के अनुसार पाप पुण्य के आधार पर कर्म के चार भेद बताए गए हैं -

१.शुक्लकर्म - अर्थात् शुभ कर्म- सुख प्राप्त कराने वाले पुण्य कर्म-यथा दान, सेवा आदि।

२.कृष्णकर्म - अर्थात् अशुभ कर्म, दुःख प्राप्त करानेवाले पाप कर्म-यथा चोरी, हिंसा आदि।

३.शुक्लकृष्णकर्म - शुभ तथा अशुभ दोनों से मिले हुवे- कुछ सुख तथा कुछ दुःख दोनों को प्राप्त कराने वाले मिश्रित कर्म-यथा खेती करना, चोरी करके दान देना, भोजन बनाना आदि। इन कर्मों से किसी को तो सुख होता है और कुछ क्षुद्र जन्तुओं कीड़े मकोड़ों की हिंसा भी होती है।

४.अशुक्लअकृष्णकर्म - अर्थात् निष्काम कर्म जो लौकिक सुख को प्राप्त कराने वाले न होकर ईश्वर की प्राप्ति या मुक्ति को प्राप्त कराने वाले होते हैं। इनमें केवल शुक्ल कर्म ही आते हैं ।

४.फल के आधार पर कर्मों के तीन भेद -

१.संचित - पिछले जन्मों से लेकर अब तक किये जा चुके कर्म -जिनका फल मिलना अभी शेष है।

२.प्रारब्ध - जिन कर्मों का फल मिलना प्रारम्भ हो गया है या मिल रहे है वे प्रारब्ध कर्म हैं। यथा शरीर का मिलना।

www.thearyasamaj.org

३.क्रियमाण - जो कर्म वर्तमान में किये जा रहे हैं उन्हें क्रियमाण कर्म कहते हैं।

५.कर्त्ता के आधार पर कर्म के तीन भेद -

१.कृत कर्म - ऐसे कर्म जिनका कर्त्ता स्वयं ही जीव होता है वे 'कृत' कर्म कहलाते हैं।

२.कारितकर्म- जिन कर्मों को जीव साक्षात् स्वयं न करके अन्यो से करवाता है या करने की प्रेरणा देता है वे 'कारित' कर्म कहलाते हैं।

३.अनुमोदितकर्म- जिन कर्मों को साक्षात् स्वयं न करता है न कराने के लिए किसी को प्रेरित/आदेश करता है किन्तु स्वतंत्र रुप से किसी के किये गये कर्म का अनुमोदन व समर्थन करता है वे कर्म अनुमोदित कर्म कहलाते हैं।

६.गीता में कर्म के तीन भेद -

१.कर्म - अच्छे कर्म

२.विकर्म - बुरे कर्म

३.अकर्म - निष्काम कर्म

७.वासना के आधार पर कर्म के दो भेद -

१.सकामकर्म- जो राग द्वेष से युक्त होकर किये जाते हैं उनसे वासना संस्कार बनते हैं।

२.निष्कामकर्म-जो राग द्वेष रहित होकर किये जाते हैं वासना उत्पन्न नहीं करते हैं।

प्रश्न ५ :- कर्मों का कर्त्ता कौन है?

उत्तर :- शरीर में इच्छापूर्वक किये जाने वाले कर्मों का कर्त्ता स्वयं जीवात्मा ही होता है। यद्यपि कर्म करने/न करने से सम्बन्धित प्रेरणा, उत्साह, आदेश, अन्य व्यक्तियों से भी मिलते हैं जो कर्म करने/न करने में निमित्त बनते हैं, किन्तु मुख्य कर्त्ता तो स्वयं शरीर में बैठा अभिमानी जीवात्मा ही है **"कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं स्वतन्त्रः यः स कर्ता"** जिसकी इच्छा और प्रयत्न से शरीर, मन, वाणी (कर्म के साधन) कर्म करने में प्रवृत्त होते हैं। पाप कर्मों के विषय में कुछ व्यक्ति ऐसा मानते हैं कि हमारी बुद्धि या मन पाप कराता है। कुछ व्यक्ति इन्द्रियों को, तो कोई भूत प्रेत को, तो कुछ प्रकृति को कर्मों का कर्त्ता मानते हैं। किसी-किसी सम्प्रदायवालों ने तो

www.thearyasamaj.org

शैतान को पाप कर्मों का कर्त्ता बताया है। कुछ व्यक्ति पेट को दोष देते हैं। तो कुछ व्यक्ति भूख को कर्मों का कारण मानते हैं। इसी प्रकार कोई समाज को, तो कोई परिस्थितियों को पाप करानेवाला मानते हैं। कुछ-कुछ तो सीधा-सीधा ईश्वर को ही संसार के अच्छे बुरे सभी कर्मों का कर्त्ता मानते हैं।

वस्तुतः ये सभी मान्यताएँ अनुपयुक्त तथा यथार्थता से रहित हैं। प्रकृति तथा प्रकृति से बने सभी पदार्थ जड तथा इच्छा-प्रेरणा रहित होने से शरीर में कर्मों का कर्त्ता नहीं बन सकते। इस दृष्टि से तो एक शरीर में अनेक कर्त्ता हो जाएँगे और परस्पर विरोध भी उपस्थित होगा। अतः ऐसा नहीं माना जा सकता। यदि ऐसा माना जाये कि ईश्वर की इच्छा/ आदेश / प्रेरणा से ही मनुष्य सब कर्मों को करता है तो फिर संसार में जो कुछ भी अच्छा-बुरा हो रहा है उसके लिए ईश्वर ही उत्तरदायी होगा। क्योंकि मनुष्य ऐसी स्थिति में ईश्वर के हाथ की कठपुतली ही बन जाएगा। ऐसी पराधीन स्थिति में कर्मों का फल जीव को क्यों मिले ? जिसने आदेश दिया है उसे ही मिले। यह अज्ञानी, स्वार्थी, दुष्ट व्यक्तियों की ही चालाकी है कि बुरे काम स्वयं करके फल से बचने के लिए उसे ईश्वर या शैतान के माथे मढ़ देते हैं।

यथार्थ स्थिति यह है कि जीव स्वयं इच्छा, प्रयत्न, ज्ञान आदि गुणों से युक्त एक चेतन तत्त्व है तथा वह एक स्वतन्त्र कर्त्ता है। मन से विचारे गये, वाणी से उच्चारित तथा शरीर से किये जा रहे सभी व्यवहार उसी की इच्छा प्रयत्न से होते हैं, वही इन सब कर्मों का कर्त्ता है।

प्रश्न ६ :- कर्मों का फल कौन देता है?

उत्तर :- जीवों द्वारा किए गए कर्मों का मुख्य फल दाता सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, परमपिता परमात्मा ही है। किन्तु मनुष्यों के कर्मों का फल केवल ईश्वर ही देता है, ऐसा नहीं है। बाल्य काल में बच्चों को उनके द्वारा किए गए अच्छे बुरे कर्मों का फल उनके माता-पिता आदि द्वारा दिया जाता है। विद्यालय में विद्या पढ़ते हुए अध्यापक आचार्यों द्वारा भी विद्यार्थियों के कर्मों का फल दिया जाता है। समाज, गांव, नगर में रहते हुए अच्छे बुरे कर्मों का फल समाज के नेता, सरपंच, पुलीस, न्यायाधीश, नगरपालिका आदि द्वारा भी दिया जाता है। सेवा नौकरी आदि करते हुए सेवक, कर्मचारी, कार्यकर्त्ताओं को उनके स्वामी सरकार

www.thearyasamaj.org

अधिकारियों द्वारा भी फल दिया जाता है। किन्तु माता-पिता से लेकर राजा तक सभी कर्मफलदाता प्रथम तो पूरे कर्मों को ठीक प्रकार देख, सुन, जान ही नहीं पाते हैं और फिर अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान, राग द्वेष आदि गुणों से युक्त होने से यह आवश्यक नहीं कि मनुष्यों के कर्मों का पूरा-पूरा फल दे देवें। वे कम-अधिक भी दे सकते हैं।

परन्तु परमात्मा मनुष्यों की प्रत्येक क्रिया को लगातार देख, सुन, जान रहा होता है। इसमें प्रमाण-

एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याणं मन्यसे।
नित्यं स्थितस्ते हृद्येष पुण्यपापेक्षिता मुनिः ।। (८/९२ मनु.)

भावार्थः-हे भद्र जो तू यह मानता है कि मैं आत्मा अकेला ही अन्दर बैठा हूँ तो ठीक नहीं, क्योंकि सबके पुण्य व पाप कर्मों को देखने वाला सर्वज्ञ न्यायकारी परमात्मा मुनि तेरे हृदय में अवस्थित रहता है।

जिन कर्मों का फल उपर्युक्त व्यक्तियों द्वारा दिया जा चुका होता है उनमें जो कमी होती है या जिन कर्मों का फल किसी भी व्यक्ति के द्वारा नहीं मिलता उन सब अवशिष्ट कर्मों का फल अन्त में ईश्वर ही दे देता है। बुद्धिमान व्यक्ति स्वयं भी अपने बुरे कर्मों का फल किन्हीं अंशों तक प्राप्त करता है।

अनूनं पात्रं निहितं न एतत्
पक्तारं पक्वः पुनरा विशाति।। अथर्व.१२/३/४८

भावार्थः-यह हमारा पात्र (कर्माशय) पूर्ण रूप से भरा हुआ है इसलिए फल देने में समर्थ है।

ये पके हुए समर्थ कर्म हम कर्ता को ही फल देने वाले होते हैं।

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते।
स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्माद् विमुच्यते।। (चाणक्यनीति ६/८)

भावार्थ :- स्वयं आत्मा ही कर्म करता है व उसके अनुसार फल भोगता है। तथा कर्मों के अनुसार ही विभिन्न योनियों में जन्म लेकर संसार में भ्रमण करता है। और स्वयं ही अपने पुरुषार्थ से संसार के वन्धनों और आवागमन के चक्र से छूटकर मुक्ति प्राप्त करता है।

प्रश्न ७ :- कृत, कारित व अनुमोदित कर्मों का फल न्यूनाधिक होता है या समान?

उत्तर :- परिस्थिति विशेष को छोड़कर सामान्य रूप से कृत

www.thearyasamaj.org

कर्मों = स्वयं किये हुवे बुरे कर्मों का फल कारित = करवाये हुवे तथा अनुमोदित = समर्थित कर्मों की अपेक्षा अधिक होता है । क्योंकि अति द्वेष आदि प्रवृत्ति होने पर व्यक्ति स्वयं ही हिंसादि दुष्कर्म करता है । अति उग्रता होने पर व्यक्ति का धैर्य, सहनशक्ति नष्ट हो जाते है । किसी से कार्य करवाने में प्रायः समय का अधिक लगना, कर्म का अनिश्चयात्मक होना तथा पूर्ण रूप से संतोष का नहीं होना आदि दोष होते हैं । जब व्यक्ति स्वयं ही किसी कर्म को करता है तो उसे तृप्ति/ सन्तोष होता है ऐसा भी देखने में आता है।

कृत से कारित कर्मों का फल कम मिलता है । क्योंकि कराने वाले व्यक्ति का कर्म अन्य कर्त्ता के अधीन होता है उसके कर्म का एक भाग बट जाता है । कर्त्ता व प्रेरक में कर्मफल बट जाता है । यदि कर्म कृत व कारित दोनों से युक्त है तो इस प्रकार की अनेक परिस्थितियों में अपवाद रूप में कर्म करनेवाले की अपेक्षा करानेवाला या अनुमोदन करनेवाला व्यक्ति अधिक दोषी होता है । यह उस स्थिति में ही संभव है जब कि प्रेरक , आदेशकर्त्ता या समर्थक व्यक्ति शक्ति, बुद्धि, सामर्थ्य, पद, प्रतिष्ठा आदि दृष्टियों से बड़ा होता है । समाज में जिसका प्रभाव, वर्चस्व अधिक होता है वह अपने इन गुणों के कारण निम्न स्तर वाले व्यक्ति को कार्य करने हेतु प्रभावित/प्रेरित करके विवश भी कर देता है ।

इससे साक्षात् कार्य करने वाला कर्त्ता व्यक्ति भय, प्रलोभन, स्वार्थ, आशंकित हानि आदि कारणों से किसी कार्य को गलत जानता मानता हुआ भी कर देता है । इस स्थिति में साक्षात् कर्त्ता प्रेरक आदेशकर्त्ता व्यक्ति की अपेक्षा कम दोषी होता है ।

प्रश्न ८ :- मानसिक, वाचनिक, शारीरिक इन तीन प्रकार के पाप कर्मों में अधिक दण्ड किसको मिलता है?

उत्तर :- विशिष्ट परिस्थितियों को छोड़कर सामान्य रूप से मानसिक पापों की अपेक्षा वाचनिक पापों का तथा वाचनिक पापों की अपेक्षा शारीरिक पापों का अधिक दण्ड मिलता है। इसका कारण यह है कि मानसिक व वाचनिक पाप की अपेक्षा शारीरिक पाप की स्थिति में व्यक्ति अधिक पीड़ित / दुःखी होता है। यदि अधर्म / पाप की भावना कम है तो कर्म मन तक ही सीमित रहते हैं। किन्तु पाप की भावना से वेग बढ़ जाने पर वे वाणी तक आ जाते हैं अर्थात् व्यक्ति न केवल पाप करने का मन में विचार करता

www.thearyasamaj.org

है अपितु वाणी से भी अन्यों को बताता है कि मैं ऐसा करूँगा। भावना तथा संवेगों के और अधिक होने पर व्यक्ति वाणी तक सीमित न रखकर शरीर से भी पाप कर देता है। पाप भावना संवेग के अधिक होने के कारण भी शारीरिक पाप में सबसे अधिक, वाचनिक में उसके कम तथा मानसिक पाप में सब से कम दण्ड मिलता है। शरीर से पाप किये जाने पर वाणी व मन से भी पाप होता है। इसी प्रकार वाणी से पाप किये जाने पर मन से भी अनिवार्य रूप से पाप हो ही जाता है। इसलिए शारीरिक पाप वाचनिक व मानसिक पाप से अधिक दण्डनीय होता है।

प्रश्न ९ :- मनुस्मृति में आठ प्रकार के घातक पापी बताये गये हैं-

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।

संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः। (मनु.५/१२)

अर्थात्- समर्थन करने वाला, काटनेवाला, मारने वाला, खरीदने वाला, बेचने वाला, पकाने वाला, परोसने वाला तथा खानेवाला ये आठ प्रकार के घातक बताए हैं। इन में सभी लोग बराबर पापी होते हैं या कम अधिक होते हैं?

उत्तर :- सामान्य रूप से माँस खाने वाले व्यक्ति को ही अधिक पापी माना गया है। क्योंकि यदि वह खाने की इच्छा न करे, न खाये तो कौन किसी प्राणी को मारेगा, बेचेगा, पकायेगा? इस प्रकार के अनेक हेतुओं से खानेवाला यद्यपि अन्तिम पापी है इससे पूर्व प्रकार के भी अन्य पापी बन चुके हैं। पुनरपि खानेवाले को ही अधिक पापी माना जाता है। फिर भी किन्हीं परिस्थितियों में खाने वाले से अतिरिक्त अन्य गिनाये गए व्यक्ति भी अधिक पापी हो सकते हैं। यथा मांस खाने की प्रेरणा देने वाला लोगों के मन में माँस खाने के गुणों को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करता है। मांसादि अभक्ष्य पदार्थों के खाने से होने वाले लाभों, महत्त्वों का मिथ्या प्रचार-प्रसार करता है तो जन सामान्य में उन पदार्थों को खाने की इच्छा उत्पन्न हो जाती है। जैसे आजकल अण्डों के प्रयोग के विषय में बढ़ा हुआ प्रचलन देखा जाता है।

प्रश्न १० :- क्या कोई अपने कर्मों का फल दूसरे को दे सकता है?

उत्तर :- अपने किये हुवे कर्मों का फल व्यक्ति को स्वयं ही भोगना पड़ता है। अपने कर्मों का फल कोई व्यक्ति किसी अन्य को नहीं दे सकता। **आत्मान्तरगुणानामात्मान्तरेऽकारणत्वात्।** (वैशेषिक-६/१/५) एक

www.thearyasamaj.org

आत्मा द्वारा किए गए पाप-पुण्य रूप धर्मा-धर्म का फल दूसरी आत्मा को नहीं मिलता। वे गुण दूसरे के सुख-दुःख के लिए कारण नहीं बनते। इसलिए कोई भी दूसरे द्वारा किए कर्मों का फल नहीं भोगता, किन्तु स्वयं कृत कर्मो के फलों को ही भोगता है। यदि अन्य के कर्म का फल अन्य को प्राप्त होना मान लिया जाए तो शास्त्र के अनुसार **'कृतहानि अकृत-अभ्यागम'** रूपी अन्याय का दोषी ईश्वर बन जाएगा। ईश्वर की न्याय व्यवस्था में ऐसा अन्याय नहीं होता।

वर्तमान धार्मिक समाज में ऐसी परम्परा देखी जाती है कि कुछ लोग यज्ञ, जप, तप आदि अन्यों से करवाते हैं और ऐसा मानते हैं कि उन पण्डित, साधु, पुजारी आदि के द्वारा किये गये जप-तपादि का फल उन्हें मिल जायेगा उनके पापों में कमी हो जाएगी। परन्तु ऐसा मानना ठीक नहीं है, यदि ऐसा होता तो धनवान्, बलवान्, विद्वान् व्यक्ति निर्धन, निर्बल, निर्बुद्धि व्यक्तियों को धन, बल आदि के द्वारा डरा-धमकाकर प्रलोभन देकर अपने सारे पाप कर्मों को अन्यों को दे देते तथा अन्यों के अच्छे कर्म को खरीद लिया करते। किन्तु ऐसा नहीं होता है। इसी प्रकार की एक घटना सारिका मासिक पत्रिका में कुछ वर्षों पूर्व प्रकाशित हुई थी। नेपाल सम्राट महेन्द्र जी की मृत्यु पर एक ब्राह्मण ने उनके पाप ले लिए। इस की कीमत के रूप में उसको बहुत धन सम्पत्ति दी गई। ऐसा माना गया कि महाराज स्वर्ग गए। वह ब्राह्मण भी कुछ दिन अज्ञात रहा बाद में तीर्थयात्रा करके प्राप्त धन से मौज से रहने लगा। वस्तुतः ऐसी मान्यता दोषपूर्ण है व ईश्वर को पक्षपातपूर्ण सिद्ध करनेवाली है।

एक व्यक्ति को ५००० रु. वेतन मिला जो एक मास के कर्मों का फल है, उस व्यक्ति ने वह सारा का सारा वेतन किसी गरीब, रोगी, अनाथ, निर्धन व्यक्ति को दे दिया। ऐसी स्थिति में लगता है कि उस व्यक्ति ने अपना सारा फल किसी और को दे दिया, किन्तु ऐसा नहीं है। धन देने वाले का अपना धन देना एक नया कर्म बन जाएगा। जिसका फल ईश्वर भविष्य में देगा। इसी प्रकार कोई दोषी, पापी, अधर्मी व्यक्ति ने अपने बुरे कर्म का दोष किसी निर्दोष व्यक्ति पर लगाकर उसे दण्ड दिलवा देता है तो वह अपने दोष से बच नहीं सकता है बल्कि यह एक नया ही कर्म बन जाता है जिसका फल उसे भविष्य में मिलेगा।

www.thearyasamaj.org

प्रश्न ११ :- कर्म करते समय फल की आशा क्यों न करें? इससे क्या हानि है?

उत्तर :- कर्म को करते समय मन में फल की आशा इसलिए नहीं रखनी चाहिये क्योंकि फल हमारी इच्छा के अनुकूल भी होता है और कभी प्रतिकूल भी होता है। यह आवश्यक नहीं कि फल के विषय में हम जैसी इच्छा मन में रखते हैं फल प्राप्ति हमारे अनुकूल ही हो। फल की अनुकूलता से मनुष्य सुख की अनुभूति करता है ओर प्रतिकूलता से दुःख की अनुभूति करता है। फल का प्राप्त करना मनुष्य के हाथ में नहीं है। फल इच्छा के अनुरूप होना या इच्छा के प्रतिकूल होना अनेक कारणों के आधार पर निर्भर करता है।

मनुष्य को इन सभी कारणों का विशेष ज्ञान नहीं होता है। हमारे हाथ में मात्र कर्म करना ही है; फल का प्राप्त होना काफी अंशों में हमारे हाथ में नहीं है। इसलिए दार्शनिक दृष्टि से हम कर्म करते रहें और 'इदन्न मम' भावना बनाते हुए फल को परमात्मा के हाथ में छोड़ दें। वह जब, जैसा, जितना चाहे तब, वैसा उतना फल देगा। गीता में भी कहा है-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।

श्री कृष्ण जी कहते हैं - हे अर्जुन कर्म करने में ही तेरा अधिकार (स्वातन्त्र्य) है कर्म के फल पाने में नहीं तू कर्मफल का प्रयोजक मत बन। निकम्मेपन में तेरी रुचि कभी न हो। कई बार हम निर्धारण कर लेते हैं कि यदि मैंने अमुक कार्य कर लिया तो अमुक दण्ड लूँगा। और यदि उस कार्य के करने पर हम वह दण्ड ले लेते हैं तो हमारी दृष्टि में निर्धारित फल से न्यूनाधिक की पूर्ति ईश्वर करता है। किन्तु फल पर हमारा बिल्कुल भी अधिकार नहीं है यह संशयित सा हो जाता है। इस लिए फल का अर्थ यहाँ परिणाम लेना होगा।

प्रश्न १२ :- क्या ईश्वर मनुष्यों को अच्छे-बुरे कर्म करने की प्रेरणा देता है?

उत्तर :- ईश्वर जीव के कर्मों का चाहे वह अच्छे हो या बुरे प्रेरक नहीं है। यदि ईश्वर मनुष्य के कर्मों का प्ररक होता तो अच्छे-बुरे कर्म का फल भी ईश्वर को ही मिलना चाहिये जीव को क्यों मिले।

www.thearyasamaj.org

यदि कर्म करने की प्रेरणा ईश्वर दे और फल जीव को मिले तो अकृताभ्यागम (=न किए की प्राप्ति) का दोष हो जाता। शास्त्रीय सिध्दान्त यही है कि अपने द्वारा किये गये कर्म का फल अपने को ही मिलता है; दूसरे को नहीं और दूसरे द्वारा किये गये कर्मों का दूसरे को मिलता है; अपने को नहीं।

जीवात्मा इच्छा, राग-द्वेष, सुख-दुःख प्रयत्न आदि गुणों से युक्त चेतन तत्त्व है। वह परमेश्वर के हाथ की कठपुतली नहीं है जैसा ईश्वर चाहे वह करता रहे। जीव की अपनी स्वतंत्र सत्ता है और अपने कर्मों को करने में पूर्णरूपेण उत्तरदायी है। यदि जीव स्वयं कर्त्ता न होता तो भोक्ता भी न होता।

हाँ इतनी बात इस विषय में समझनी चाहिये कि जब जीवात्मा अपने मन में किसी अच्छे कार्य को करने का विचार करता है तो ईश्वर की ओर से अच्छे कार्य करने के लिए उत्साह, प्रसन्नता, निर्भयता आदि की भावना प्रदान की जाती है। इसके विपरीत जब जीवात्मा बुरे कार्य करने का विचार करता है तब ईश्वर मन में भय, शंका, लज्जा आदि की भावना प्रदान करता है। यह भावना जीव के मन में किसी अच्छे-बुरे कर्म को करने न करने की इच्छा किये जाने के पश्चात् होती है, पूर्व नहीं। यदि परमेश्वर कार्य करने से पूर्व ही जीवों को प्रेरणा देवे तो शास्त्रों में किए गए विविध विधान व निषेध व्यर्थ ही हो जाएँ। अर्थात् उनकी आवश्यकता ही न रह जाए। **कृतप्रयत्नापेक्षास्तु विहितप्रति--षिद्धावैयर्थ्यादिभ्यः।** (वेदान्त-२/३/४२)

प्रश्न १३ :- क्या ईश्वर मनुष्यों को अपनी इच्छा से जैसा चाहता है वैसा फल देता है? किसी को अच्छा तो किसी को बुरा, किसी को धनिक तो किसी को गरीब, किसी को रूपवान तो किसी को कुरूप, किसी को बुद्धिमान तो किसी को मूर्ख बना देता है ?

उत्तर :- ईश्वर अपनी इच्छा से किसी मनुष्य को विना कर्म किये सुख या दुःख रूप में फल नहीं देता है। यदि ईश्वर अपनी इच्छा से मनुष्यों को सुख-दुःख देता तो कर्मों का कोई महत्त्व ही नहीं रहता। जब कि वेदादि शास्त्रो में अच्छे कर्त्तव्य कर्मों को करने का निर्देश दिया गया है तथा बुरे कर्मों को न करने का आदेश दिया गया है।

www.thearyasamaj.org

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि।।
(ऋ.७/३२/२६)

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः। (ऋ.१०/३४/१३)

तुम कभी जुआ मत खेलो; खेती का कार्य करो। परिश्रम से प्राप्त धन को पर्याप्त मानकर उसी से सन्तुष्ट रहो।

मा गृधः कस्य स्विद्धनम्। (यजु. ४०/१)

किसी के धन का लालच मत करो।

अच्छे कर्मों को करने तथा बुरे कर्मों को न करने का विधान दिया जाने से यह स्पष्ट है कि जीवात्मा कर्म करने में स्वतंत्र है। अपनी स्वतंत्रता से किये गये कर्मों का फल ही वह ईश्वर की व्यवस्था से प्राप्त करता है।

इसके अतिरिक्त ईश्वर अपनी इच्छा से बिना जीव के कर्मों की अपेक्षा रखते हुवे, किसी को सुख व किसी को दुःख देता तो वह अन्यायी सिद्ध हो जाता। ऐसा ईश्वर नहीं है वह तो न्यायकारी है। न्यायकारी उसी को कहते हैं जो कि जीवों के कर्मानुसार फल देता हो। ईश्वर के न्यायकारी होने, जीवों के लिए अच्छे-बुरे कर्मों को करने, न करने का विधान होने से अर्थात् जीवात्मा के कर्म करने में स्वतंत्र होने से सिद्ध है कि ईश्वर अपनी इच्छा से बिना कर्मों की अपेक्षा से किसी को सुख-दुःखरूपी फल नहीं देता है।

प्रश्न १४ :- क्या कर्म बिना फल दिये भी नष्ट हो सकते हैं?

उत्तर :- नहीं, बिना फल दिये कर्म कभी भी नष्ट नहीं होते।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्। (महाभारत)
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।। (अत्रि स्मृति)

जैसे हजारों गायों में बछड़ा केवल अपनी माँ के पास ही जाता है; उसी प्रकार जो किया हुआ कर्म अपने करने वाले के पीछे हो लेता है। कोई कितना ही हाथ-पैर जोड़े, गिड़गिड़ाए, ग्लानि, दुःख पश्चात्ताप की अनुभूति करे, दान दे, तीर्थ यात्रा करे, माला फेरे, जप करे, यज्ञ-तप करे, मौन एकांत का सेवन करे, सेवा, परोपकार, सामाजिक कल्याण के कार्यों को करे पुनरपि किये हुए कर्मों का फल भोगे बिना छुटकारा नहीं मिल सकता।

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो गच्छति मातरम्।
तथा यच्च कृतं कर्म कर्त्तारमनुगच्छति।। (चाणक्यनीति१३/१४)

कर्म शुभ हो या अशुभ, चाहे वह ज्ञानपूर्वक किये गए हों या

www.thearyasamaj.org

अज्ञान पूर्वक उसका फल अवश्य भोगना ही पड़ता है। करोड़ों जन्म, कल्प सृष्टि भी क्यों न बीत जाए बिना फल भोगे उन कर्मों का क्षय नहीं होता।

दृष्टादृष्टप्रयोजनानां दृष्टाभावे प्रयोजनमभ्युदयाय। (वैशेषिक-६/२/१) दृष्ट अदृष्ट फल के उपभोग के निमित्त किए गए कर्मों का यदि तत्काल उसी समय फल प्राप्त न हो तो उस स्वरूप वाला (बचा हुआ) फल का निमित्त कर्म (प्रयोजन) अभ्युदयाय (तत्काल से अतिरिक्त) वर्तमान के तथा भावी उत्कर्ष के लिए होता है। इसी जन्म में या अगले जन्म में कल्याण के लिए होता है।

कहीं-कहीं शास्त्रों में ऐसे वाक्यों का प्रयोग किया गया है कि जिनमें कुछ लोग यह अर्थ निकालते हैं कि ऐसा करने से कर्म नष्ट हो जाता है। यथा योगदर्शन २-१३ व्यासभाष्य- **'यत्त्वदृष्टजन्मवेदनीयं कर्मानियतविपाकं तन्नश्येदावापं वा गच्छेदभिभूतं वा चिरमप्युपासीत यावत्समानं कर्माभिव्यञ्जकं निमित्तमस्य न विपाकाभिमुखं करोतीति।**

अर्थात् ऐसे कर्म जिनका फल इस जन्म में मिला नहीं है तथा आगे जन्म होना भी नहीं है; जीव मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ऐसी स्थिति में जो कर्म शेष रहते हैं उन कर्मों को मुक्ति से लौटकर जब मनुष्य जन्म मिलेगा तब भोगेगा तब तक वे ईश्वर के ज्ञान में बने रहेंगे। इन्हीं कर्मों को लम्बे काल तक = मुक्ति के काल तक न भोगने के कारण नष्ट होना कह दिया गया है। वास्तव में वे नष्ट नहीं होते हैं।

प्रश्न १५ :- क्या वेदादि शास्त्रों में बताये कर्मों को न करने पर दण्ड मिलता है?

उत्तर :- इस विषय में ऐसा जानना चाहिये कि जो कर्म सामान्य रूप से सभी मनुष्यों के द्वारा अवश्य ही करने योग्य होते हैं जिनको किये बिना मनुष्य का जीवन सुखी, शान्त, सन्तुष्ट नहीं होता है। वेद में भी कहा है कि- **"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँ समाः"।** (यजु.४०/२) कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीने की कामना करो।

अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः।
त्वं तस्यामित्रहन्वधर्दासस्य दम्भय।। (ऋ.१०.२२.८)

जो कर्म नहीं करता वह दस्यु है; उसे कोई सुख नहीं होवे; जो व्रतहीन है वह मनुष्य नहीं है। हे न्यायकारी ईश्वर ! तुम शत्रुओं के समान उसका वध कर दो अथवा दास के समान उस पर अनुशासन करो।

www.thearyasamaj.org

वेदादि शास्त्रों में सैकड़ों, हजारों प्रकार के कर्मों का निर्देश किया गया है। सभी को तो एक मनुष्य नहीं कर सकता किन्तु ऐसे कर्मों को जो सभी मनुष्यों के लिए तत् तत् वर्णाश्रमस्थ सामान्य रूप से करने योग्य, उचित, आवश्यक, लाभकारी कर्त्तव्य हैं उनको जो व्यक्ति नहीं करता है वह दोषी होता है। जैसे कि वेद का पढ़ना सभी मनुष्यों के लिए ईश्वर की ओर से अनिवार्य है। यदि कोई व्यक्ति माता-पिता के अज्ञान, आलस्य, प्रमाद, राग, गुरुकुल की व्यवस्था न होने आदि किसी भी कारण से नहीं पढ़ता है। वेद को न पढ़ने से एक ओर तो वह वास्तविक तत्त्वज्ञान से वंचित होगा। जिससे उसके कर्म-उपासना भी तदनुरूप न हो सकेंगे। यह तो उसकी हानि होगी ही। दूसरी तरफ वह ईश्वर की ओर से दण्डनीय भी होगा। क्योंकि वेद पढ़ना सबका आवश्यक कर्म है।

प्रश्न १६ :- कर्म का फल, कर्म का परिणाम तथा कर्म का प्रभाव क्या हैं? इन तीनों में क्या भेद है?

उत्तर :- प्रायः सामान्य व्यक्ति सुख-दुःख की प्राप्ति का कारण कर्मों का फल ही मान लेते हैं जब कि वस्तु स्थिति यह है कि मनुष्य को कर्म के फल के रूप में तो सुख दुःख आदि मिलते हैं। किन्तु कर्म के परिणाम व प्रभाव के रूप में भी सुख-दुःख आदि की प्राप्ति होती है। अपने कर्म के परिणाम व प्रभाव से भी सुख-दुःख की प्राप्ति होती है तथा दूसरे द्वारा किये जाने वाले कर्म के परिणाम व प्रभाव से भी सुख-दुःख की प्राप्ति होती है। इन तीनों की परिभाषा-

(१) **कर्म का फल** :- कर्म पूरा हो जाने पर, कर्म के अनुरूप, अच्छे या बुरे कर्म के कर्त्ता को जो न्यायपूर्वक; न कम न अधिक; ईश्वर, राजा, गुरु, माता-पिता, स्वामी आदि के द्वारा सुख-दुःख; या सुख-दुःख को प्राप्त करने के साधन प्रदान करना कर्म का फल कहलाता है।

उदाहरण- किसी घृत विक्रेता ने वनस्पति घी में पशु की चर्बी मिलाकर विक्रय किया। पकड़ा जाने पर राजा द्वारा १९ वर्ष की कठोर सजा दी गई तथा १६ लाख रुपयों का दण्ड किया गया यह कर्म का फल है।

(२) **कर्म का परिणाम** :- क्रिया करने के तत्काल पश्चात् की जो प्रतिक्रिया है, उसे "कर्म का परिणाम" कहते हैं। जिस व्यक्ति या

www.thearyasamaj.org

वस्तु से सम्बन्धित क्रिया की होती है कर्म का परिणाम उसी व्यक्ति या वस्तु पर होता है।

उदाहरण– चर्बी मिश्रित नकली घी के विकृत हो जाने पर खाने वाले सैकड़ों-हजारों व्यक्ति रोगी हो गये, अन्धे हो गए। यह घी विक्रेता के मिलावट का परिणाम है कि जिन्होंने घी खाया वे तो रोगी हुए; अन्य जिन्होंने नहीं खाया वे स्वस्थ ही रहे।

उदाहरण– चालक द्वारा शराब पीकर बस चलाने से दुर्घटना हुई, इसके होने पर पाँच व्यक्ति मारे गये, दस घायल हो गये, बीस को चोटें आईं। यह सब कर्म का परिणाम है। उन सबको दुःख की अनुभूति हुई। उनके अनेक कार्य और योजनाएँ असफल हुईं। चिकित्सा आदि में बहुत समय और धन लगा। यह सब कर्मों का परिणाम है। चालक को शराब पीकर बस चलाने और उसे दुर्घटनाग्रस्त कर देने रूप कर्म का फल तो शासक या ईश्वर बाद में देगा।

(३) **कर्म का प्रभाव** :– किसी क्रिया, उसके परिणाम या फल को जानकर अपने पर या दूसरों पर जो मानसिक; सुख-दुःख, भय, चिन्ता, शोक आदि असर होता है। उसे कर्म का प्रभाव कहते हैं। जब तक सम्बन्धित व्यक्ति को क्रियादि का ज्ञान नहीं होगा तब तक उस पर कोई प्रभाव नहीं होगा।

उदाहरण– वनस्पति घी में पशु की चर्बी मिलाकर गाय का घी बनाकर बेचने वाला व्यापारी जब पकड़ा जाता है तो उसके घर वाले सगे संबंधी मित्रादि दुःखी होते हैं तथा उसके शत्रु, धार्मिक सज्जन सुखी होते हैं। बाजार में मिलने वाले गाय के घी पर आम जनता का संशय / अविश्वास हो जाता है। यह भी प्रभाव है। कर्म के परिणाम प्रभाव फल को एक ही दृष्टांत में निम्न प्रकार से समझ सकते हैं–

उदाहरण– बार बार मना करने पर भी बालक चाकू से खेल रहा था और खेलते-खेलते चाकू से बालक से अंगुली कट गयी, अंगुली कटने पर खून निकला। खून को देखकर पास में बैठा बालक रोने लगा। रोना सुनकर थोड़ी दूर खड़ी बालक की माता आयी और चाकू से खेल रहे बालक की अंगुली कटी देखी। यह देखकर माता ने बालक को दो थप्पड़ लगाए। यहाँ

www.thearyasamaj.org

दृष्टांत में बालक की अंगुली का कटना कर्म का परिणाम है, क्योंकि यह क्रिया के तत्काल बाद हुई प्रतिक्रिया है। पास में बैठे छोटे बालक का रोना कर्म का प्रभाव है, क्योंकि यह अंगुली कटने रूप परिणाम को देखकर, खून का निकलना रूप परिणाम देखकर, क्रिया का असर है। माता द्वारा बालक को थप्पड़ लगाना कर्म का फल है क्योंकि क्रिया के अनुरूप आज्ञा भंग का कर्त्ता बालक को थप्पड़ लगाना रूप दण्ड दिया गया है। कर्म का परिणाम प्रायः तुरन्त होता है पर प्रभाव व फल में समय लगता है। कई बार अधिक और कई बार बहुत अधिक समय भी लगता है।

प्रश्न १७ :- फल की परिभाषा क्या है?

उत्तर :- कर्म का फल भोग है जो सुख-दुःख रूपी अनुभूति वाला होता है। फल हमेशा कर्ता को ही मिलता है। सुख-दुःख रूपी फल जीवात्मा शरीर, मन, इन्द्रिय तथा विषय से साथ जुड़कर ही प्राप्त करता है और फल भी इन्हीं के माध्यम से मिलता है। बिना शरीर आदि के यह सुख-दुःख प्राप्त नहीं होतेहैं। कर्म भी जीव इन्हीं साधनों से करता है। संसार में स्त्री, पुत्र, सोना, चांदी, भूमि, भवन, मान, पद, प्रतिष्ठा आदि को फल के रूप में मानते हैं। यह सब वस्तुएँ वास्तव में सुख-दुःख प्राप्त कराती हैं और साधन मात्र हैं। साधन होने से इन्हें फल के समान मान लिया जाता है, इसलिए ऋषियों ने सकाम कर्मों के फल के रूप में जाति (योनिविशेष), आयु, भोग माने हैं। तथा निष्काम कर्मों के फल के रूप में मोक्ष फल माना है। किन्तु वास्तव में फल तो केवल सुख-दुःख ही हैं।

इसमें शास्त्रीय प्रमाण-

१. प्रवृतिदोषजनितोऽर्थः फलम्। (न्याय.१/१/२०)

राग-द्वेष युक्त कर्म से उत्पन्न अर्थ का नाम फल है।

२. तत्सम्बन्धात् फलनिष्पत्तेस्तेषु फलवदुपचारः। (न्याय.४/१/५४)

स्त्री, पुत्र, सोना, चांदी, भूमि, भवन, मान, पद, प्रतिष्ठा के माध्यम से सुख-दुःख रूपी फल की प्राप्ति होती है। अतः स्त्री आदि को फल कहा जाता है।

३. आत्मेन्द्रियमनोऽर्थसन्निकर्षात् सुखदुःखे । (वैशेषिक ५/२/१५)

जीवात्मा का मन, इन्द्रिय तथा विषय के साथ सम्वन्ध होने पर सुखदुःख रूप फल उत्पन्न होते हैं।

कई बार कर्ता को क्रिया के परिणाम, फल व प्रभाव की कल्पना भी

www.thearyasamaj.org

नहीं होती, पर जब वैसा होता है तो उसके अनुसार वह स्वयं भी सुखी-दुःखी होता है। राजा अशोक ने जब कलिंग युद्ध लड़ा तो उसने परिणाम सोचा था साम्राज्य का विस्तार। पर हजारों की संख्या में रोते-बिलखते परिवारों को देख उसे वैराग्य हो गया। यह स्वयं कर्ता पर युद्ध का कल्पनातीत प्रभाव था। जिस व्यक्ति ने आईन्स्टीन के फार्मूले के आधार पर अणुबम बनाया उसने सोचा भी नहीं था कि जापान में इतना भयंकर संहार होगा। जब हिरोशिमा नागासाकी पर बम गिराए गए तो ऐसा बताते हैं उस वैज्ञानिक को इतना कष्ट हुआ कि वह मानसिक रूप से पागल हो गया। यह अणुबम बनाने का कर्ता के ऊपर प्रभाव था।

प्रश्न १८ :- प्रायश्चित्त क्या है? क्या बुरे कर्मों के फल को नष्ट या कम किया जा सकता है?

उत्तर :- प्रायश्चित्त की परिभाषा निम्न है -

प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते।
तपो निश्चयसंयुक्तं प्रायश्चित्तमिति स्मृतम्। (मनुस्मृति ११/४)

प्रायः तप को कहते हैं और चित्त निश्चय को कहते हैं। तप और निश्चय का संयुक्त होना ही प्रायश्चित्त कहलाता है। अर्थात् किये गये बुरे कर्मों के प्रति मन में ग्लानि, खिन्नता, दुःख की अनुभूति करना तथा ऐसे कर्मों को भविष्य में न करने को दृढ़ प्रतिज्ञा करना प्रायश्चित्त कहलाता है। किसी बुरे कर्म के विषय में प्रायश्चित्त करने से उसके फल से हम बच नहीं सकते न उसमें किसी प्रकार की कमी आती है। तो फिर प्रायश्चित्त करने का क्या लाभ है ? इसका उत्तर यह है कि यद्यपि प्रायश्चित्त से कर्म फल नष्ट नहीं होता पुनरपि इस का बहुत लाभ है। जो हम बुरा कर्म करते हैं उसका एक चित्र हमारे मन में बन जाता है जिसे शास्त्र में संस्कार या वासना नाम से कहा गया है। इसे हम Nagative भी कह सकते हैं। जैसे एक निगेटिव से बाद में अनेक Photographs (चित्र) निकलते हैं उसी प्रकार इस संस्कार को जब-जब जीवात्मा देखता है तो पुनः ऐसे ही बुरे कार्य करने की मन में इच्छा उत्पन्न होती है।

प्रायश्चित्त करने से मन पर बुरे कर्मों का संस्कार नहीं बनता है अथवा कम बनता है और जो कुछ क्षीण सा बुरे कर्म का संस्कार बना है वह नष्ट हो जाता है। और जब वह संस्कार नहीं रहता या कम रहता है तो बुरे कर्म करने की पुनः अन्तःकरण में इच्छा नहीं होती है या अपेक्षाकृत

www.thearyasamaj.org

कम होती है यह प्रायश्चित्त का बहुत बड़ा लाभ है।

वस्तुतः बुरे कर्मों को बार-बार करने में ये संस्कार ही प्रमुख भूमिका निभाते हैं। यह हम अपने जीवन में आत्मनिरीक्षण करके देख सकते हैं। अनेकों ऐसे कर्म हैं जिन्हें हम बुरा मानते हैं, स्थूल रूप से उन्हें करना भी नहीं चाहते उनको त्याज्य समझते हैं। किन्तु उन बुरे कर्मों के संस्कार इतने प्रबल होते हैं कि हमें वैसा करने के लिए प्रेरित कर ही देते हैं।

कृत्वा पापं हि सन्तप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते।
नैवं कुर्यात् पुनरिति निवृत्त्यापूयते तु सः।। (मनुस्मृति ११/२३)

जो पापकर्म हो चुका उसके लिए प्रायश्चित्त करे अर्थात् निश्चित रूप से यह ठान ले और प्रतिज्ञा करे कि मैं पुनः इस प्रकार का पाप नहीं करूँगा। इससे वह व्यक्ति पवित्र आचरणवाला बन जाता है।

सावित्रीं च जपेन्नित्यं पवित्राणि च शक्तितः।
सर्वेष्वेवव्रतेष्वेवं प्रायश्चित्तार्थमादृतः।। (मनुस्मृति ११/१८)

अर्थात् प्रायश्चित्त कर्ता प्रायश्चित्तकाल में अपनी शक्ति के अनुसार अधिक से अधिक गायत्री मन्त्र और मन को पवित्र करनेवाले अघमर्षण मन्त्रों का जप करे। ऐसा करना सभी व्रतों में प्रायश्चित्त के लिए उत्तम माना गया है। बुरे कर्मों के संस्कार न बने, हमारा जीवन पवित्र बना रहे और उन्नति को प्राप्त होता रहे इसलिए प्रायश्चित्त बहुत महत्त्वपूर्ण साधन है। अतः शास्त्रकारों ने इसका विधान किया है।

प्रश्न १९ :- कर्म का फल कब मिलता है? कर्म करने के कितने समय पश्चात् फल मिलता है?

उत्तर :- कर्मों का फल शीघ्र मिलता है और विलम्ब से भी। यह आवश्यक नहीं है कि कर्म करते ही तत्काल मिल जाए। कर्म का फल और उसके काल का निर्धारण कर्म के प्रकार के अनुसार होता है। किसी कर्म का फल तत्काल भी मिल जाता है तो किसी का कुछ मास के पश्चात् तथा कुछ का वर्षों के पश्चात् भी मिलता है। जिन कर्मों का फल इस जन्म में नहीं मिलता है उनका फल अगले जन्म में मिलता है।

उदाहरण- पालक आदि सब्जी मात्र १-२ मास में ही हो जाती है, गेहूँ-चना ४-५ मास में होते हैं तो आम, अनार आदि का फल ५-६ वर्ष में आते हैं। सुपारी, नारियल ८-९ वर्ष में आते हैं । ऐसे ही कर्म के फल के विषय में समझना चाहिये।

www.thearyasamaj.org

जिन कर्मों का फल माता-पिता, गुरु, आचार्य, सम्बन्धी, स्वामी, समाज, राजा आदि द्वारा दे दिया जाता है, उनका फल इसी जन्म में मिल जाता है। किन्तु जिन कर्मों का फल उपर्युक्त माता-पिता, स्वामी, राजा आदि व्यक्ति द्वारा नही दिया जाता या कम दिया जाता है उसका फल अगले जन्म में ईश्वर द्वारा दिया जाता है।

कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि इस जन्म में किए गए कर्मों का फल इस जन्म में नहीं मिलता बल्कि अगले जन्म में मिलता है और इस वर्तमान जन्म में हम जो फल प्राप्त कर रहे हैं वह पूर्व जन्म के कर्मों का फल है। इस जन्म में कर्मों का किंचित् मात्र भी फल नहीं है ऐसा मानना ठीक नहीं है।

इस जीवन में हमें जो सुख-दुःख मिल रहा है वह सब इसी जीवन के कर्मों का फल नहीं है, इसमें बहुत सा भाग पिछले जन्म का भी है और जो कर्म हम वर्त्तमान जीवन में कर रहे हैं उन सबका फल इसी जीवन में नहीं मिलेगा। कुछ का तो मिलेगा; शेष कर्मों का फल अगले जीवन में मिलेगा।

प्रश्न २० :- इसमें प्रमाण क्या है कि इस जन्म के कर्म इसी जन्म में फल देते हैं?

उत्तर :- (१) क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः ।
(योग. २-१२)

अविद्यादि क्लेशों से युक्त होकर किये गए कर्मों का फल वर्त्तमान तथा अगले जन्म में भोगने योग्य होता है।

(२) अभिवादन शीलस्य नित्यं वृध्दोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्त आयुर्विद्यायशोबलम्।। (मनु. २-७८)

जो व्यक्ति विद्वानों, वृध्दों की विनम्रता से, श्रध्दा से सेवा आदि करते हैं उनकी आयु, विद्या, कीर्ति और बल ये चार सदा बढ़ते हैं।

देवानाꣳ सख्यमुपसेदिमा वयं देवा नऽआयुः प्रतिरन्तु जीवसे।
(यजु. २५-१५)

हम देवों का सत्संग करें जिससे हमारी आयु बढ़े।

तीव्र शुभ कर्म इसी जन्म में पककर शीघ्र ही फल देते हैं इसमें योगदर्शन २/१२ के व्यासभाष्य में भी एक प्रमाण मिलता है।

तत्र तीव्र संवेगेन मंत्र तपः समाधिभिर्निर्वर्तित ईश्वरदेवतामहर्षि-महानुभावानामाराधनाद्वा यः परिनिष्पन्नः स सद्यः परिपच्यते।

www.thearyasamaj.org

भावार्थः- उनमें से तीव्र वेग से मंत्र, तप, समाधियों के द्वारा सम्पादित अथवा ईश्वर, देवता, महर्षि महानुभावों की आराधना से सम्पादित जो पुण्य कर्माशय है वह शीघ्र फल देता है।

० तीव्र अशुभ कर्म भी इसी जन्म में जल्दी पक कर फल देते हैं।

यथा तीव्र क्लेशेन भीतव्याधित कृपणेषु विश्वासोपगतेषु वा महानुभावेषु वा तपस्विषु कृतः पुनः पुनरपकारः स चापि पापकर्माशयः सद्य एव परिपच्यते। (व्यासभाष्य २/१२)

भावार्थः- इसी प्रकार तीव्र क्लेश के द्वारा भीत, रुग्ण, कृपापात्रों वा विश्वस्त महानुभावों अथवा तपस्वियों के प्रति बार-बार किया गया अपकार, वह पापकर्माशय भी शीघ्र फल देता है।

प्रश्न २१ :- अच्छे कर्म करने वाले (धार्मिक) व्यक्ति पर बाधा कष्ट आते हैं? क्या यह उनके अच्छे कर्मों का फल है?

उत्तर :- अच्छे कर्म करने वाले व्यक्ति को ईश्वर की तरफ से सदा सुख, शान्ति, प्रेम, सहयोग, उत्साह, प्रेरणा आदि ही मिलते हैं। इसमें किसी भी प्रकार का विकल्प नहीं है। किन्तु परिवार, समाज की ओर से कभी-कभी सुख, सहयोग, प्रेम, सान्त्वना के विपरीत भय, तिरस्कार, घृणा, उपेक्षा, विरोध, निन्दा, अन्याय आदि भी प्राप्त होते हैं।

ऐसे ही बुरे कर्म करने वाले व्यक्ति को ईश्वर की ओर से तो सदा दुःखादि ही मिलते हैं; किन्तु परिवार, समाज के व्यक्ति के द्वारा कभी-कभी ऐसे व्यक्ति को सुख, सहयोग, प्रेम आदि भी मिलते हैं।

अच्छे कर्मों का फल सुख ही है। किन्तु समाज में अनेक बार इसके विपरीत यह देखने को मिलता है कि अच्छे काम करने वाले दुःखी और बुरे काम करने वाले सुखी होते हैं। यह सब विपरीत स्थिति अज्ञानी, अन्यायकारी, स्वार्थी, व्यक्तियों व समाज के द्वारा ही उत्पन्न की जाती है। अच्छे कर्म करने वालों में किन्हीं के जीवन में कष्ट, बाधायें देखी जाती हैं। उनके अनेक कारण हैं-

(१) अच्छे काम करने वाले आदर्श व्यक्तियों के कारण समाज में जो बुरे काम करने वाले अनादर्श व्यक्ति हैं उनके हितों/स्वार्थों में बाधा उत्पन्न होती है, परिणाम स्वरूप वे बुरे व्यक्ति अच्छे व्यक्तियों तथा, उनके कार्यों का अनेक प्रकार से विरोध करते हैं, कष्ट पहुँचाते हैं।

www.thearyasamaj.org

(२) आज की परिस्थिति में समाज में अच्छे व्यक्तियों की संख्या कम है तथा वे संगठित नहीं हैं। न ही वे किसी योजनाबद्धरूप से बुरे व्यक्तियों का, बुरे कार्यों का विरोध करते हैं।

(३) इसके विपरीत बुरे व्यक्तियों की संख्या अधिक है। यदि कहीं कम भी है तो वे योजनाबद्धरूप से अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए मिलकर कार्य करते हैं।

(४) अच्छे व्यक्ति अनेक बार किन्हीं विषयों में, किन्हीं व्यवहारो में अपनी अज्ञानता के कारण भी भूल से, शीघ्रता से, परिणामों, प्रभावों को ठीक प्रकार बिना विचारे कार्यों को कर देते हैं। परिणाम स्वरूप उनके कार्यों में बाधायें बढ़ जाती हैं।

(५) अनेक बार अच्छे विचारों वाले व्यक्ति अपने सामर्थ्य, अनुभव, अभ्यास, साधनों की अपेक्षा अधिक मात्रा में बड़े-बड़े कार्यों को प्रारंभ कर देते हैं। परिणाम स्वरूप उनको उन कार्यों में सफलता नहीं मिलती है और कष्ट होता है।

(६) अच्छे कार्यों को करना, सत्य व आदर्श पर चलना स्वभावतः परिश्रमसाध्य, कष्टकर ही होता है। इसके विपरीत बुरे कार्यों को करने व असत्य, अनादर्श मार्ग पर चलने में कोई विशेष पुरुषार्थ आदि की अपेक्षा नहीं होती है।

(७) अच्छे व्यक्तियों को प्राप्त होने वाले सम्मान, प्रतिष्ठा, सुख, समृद्धि को सहन न करके बुरे व्यक्ति ईर्ष्या, द्वेष, प्रतिस्पर्धा के कारण अच्छे व्यक्तियों के विरुद्ध झूठे मनगढ़न्त मिथ्या आरोप लगाकर उनको फँसा देते हैं तथा सामान्य जनता को अच्छे व्यक्तियों का विरोधी बना देते हैं।

(८) अच्छे कामों को करने वाले आदर्श व्यक्तियों को जो कष्ट बाधा आदि का सामना करना पड़ता है, उसे अच्छे कर्मों का फल तो नहीं मानना चाहिये किन्तु इन कष्टों बाधाओं को अच्छे कर्मों का परिणाम, प्रभाव कहा जा सकता है।

अच्छे कर्मों का बुरा प्रभाव, परिणाम, सत्य, आदर्श, न्याय को न समझने वाले अज्ञानी, स्वार्थी लोगों के द्वारा ही उत्पन्न किया जाता है। बुद्धिमान धार्मिक व्यक्तियों पर तो अच्छे कर्मों का प्रभाव परिणाम अच्छा ही होता है। वे अच्छे कर्म करने का तो अच्छा प्रतिभाव देते हैं।

www.thearyasamaj.org

प्रश्न २२ :- संसार में शुभ कर्म करने वाले दुःखी और अशुभ कर्म करने वाले सुखी क्यों दिखाई देते हैं?

उत्तर :- यह धारणा नितान्त मिथ्या है कि सुकर्मी दुःखी होते हैं तथा कुकर्मी सुखी होते हैं। बाहर से दुःखी दिखाई देने वाला सुखी, प्रसन्न होता है और बाहर से सुखी दिखने वाला भीतर से कितना दुःखी, अशान्त, चिन्तित, भयभीत होता है यह वही जानता है, बाहर के व्यक्ति नहीं जान सकते हैं। यह सुकर्मी और कुकर्मी को देखने वाले की भ्रान्ति है। उनका परीक्षण करने में भ्रान्ति है। उनको गहराई से परीक्षण करना नहीं आता है। अज्ञानी - शास्त्र ज्ञान से हीन, अकुशल परीक्षकों का यह निर्णय होता है कि कुकर्मी सुखी है व सुकर्मी दुःखी है। जो बाहर से दिखाई देता है वह भीतर से वैसा नहीं होता है। अनेक बार ऐसा देखने में आता है कि कुछ आम, सेव, अनार बाहर से परिपक्व, सुन्दर, अच्छे दिखाई देते हैं परन्तु अन्दर से सड़े होते हैं। इसके विपरीत कुछ फल बाहर से कुछ दाग वाले, कटे, फटे, गले होते हैं किन्तु अन्दर से वे बिल्कुल अच्छे होते हैं। यही स्थिति सुकर्मी व कुकर्मी व्यक्तियों के जीवन में होती है। कुछ अच्छे काम करने वाले दुःखी होते हैं और कुछ बुरे काम करने वाले सुखी देखे जाते हैं।

प्रश्न २३ :- समाज में व देश में चोरी करने वाले, रिश्वत लेने वाले, मिलावट करने वाले, अधिक मुनाफा लेने वाले, झूठी गवाही, असत्य, छल-कपट आदि गलत कार्यों को करके धन, सम्पत्ति इकट्ठी करने व गलत कार्य करने वाले व्यक्ति सुखी दिखाई देते हैं। क्या ईश्वर उनको देखता नहीं है? दण्ड नहीं देता? जब ऐसे गलत कार्य करने वाले सुखी देखे जाते हैं तो धर्म, सदाचार, नैतिकता पर से लोगों का विश्वास ही हट जाता है और अन्य लोग भी ऐसे लोगों का अनुकरण करके उनकी तरह बुरे काम करने लग जाते हैं और इससे सारे समाज, राष्ट्र में भ्रष्टाचार फैल जाता है जो आज हम स्पष्ट देखते हैं?

उत्तर :- यह पहले ही से बताया जा चुका है कि मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र है। **"कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं यः स्वतन्त्रः सः कर्ता।"** वह अच्छा बुरा जैसा चाहे अपनी इच्छा से कर सकता है। झूठ, छल-कपट, चोरी, मिलावट, रिश्वत, शोषण, अन्याय आदि के द्वारा वह क्या प्राप्त करेगा? रुपया-पैसा। इन रुपयों से वह अच्छा मकान, गाड़ी,

www.thearyasamaj.org

वस्तु, भोजन, मनोरंजन के साधनों को प्राप्त करके भी क्षणिक सुख ही तो पाता है। किन्तु इन साधनों व साधनों के पीछे बुरे कर्मों से प्राप्त धन का जो दोष है, पाप हैं उसका डंक, विष व उसकी आग उसे अन्दर ही अन्दर चुभती, जलाती रहती है।

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति।। (मनु. ४-५६)

अर्थ :- जब अधर्मात्मा मनुष्य धर्म की मर्यादा छोड़ (जैसे तालाब के बाँध को तोड़ जल चारों ओर फैल जाता है वैसे) मिथ्याभाषण, कपट, पांखड अर्थात् रक्षा करने वाले वेदों का खंडन, और विश्वासघात आदि कर्मों से पराये प्रदार्थों को लेकर, प्रथम बढ़ता है और धनादि ऐश्वर्य से खान, पान, वस्त्र, आभूषण, यान, स्थान, मान, प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है। अन्याय से शत्रुओं को भी जीतता है। पश्चात् शीघ्र नष्ट हो जाता है, जैसे जड़ से कटा हुआ वृक्ष नष्ट हो जाता है, वैसे ही अधर्मी नष्ट हो जाता है।

मनुष्य निश्चय करके जाने कि इस संसार में जैसे गाय आदि की सेवा का फल दूध आदि शीघ्र प्राप्त नहीं होता वैसे ही किए हुए अधर्म का फल शीघ्र प्राप्त नहीं होता किंतु वह किया हुआ अधर्म धीरे-धीरे कर्ता के सुखों को रोकता हुआ सुख के मूलों को काट देता है पश्चात् अधर्मी दुःख ही दुःख भोगता है। इसलिए यह कभी नहीं समझना चाहिए कि कर्ता का किया हुआ कर्म निष्फल होता है।

प्रश्न २४: - कोई ऐसा भी कर्म हो सकता है जिसके पीछे मनुष्य की कोई भी कामना (सांसारिक या मोक्ष) न हो?

उत्तर :- एक क्षण के लिए भी मनुष्य कर्म से रहित नहीं होता। मानसिक, वाचनिक या शारीरिक कोई न कोई कर्म सर्वदा करता ही रहता है। मनुष्य के उन सभी कर्मों के पीछे उसकी प्रबल इच्छा व प्रयत्न कारण बनते हैं। उसकी इच्छा मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है। दुःख व दुःख के कारणों से छुटकारा और सुख व सुख के साधनों की प्राप्ति। मनुष्य का प्रत्येक कर्म इन दो उद्देश्यों से युक्त रहता है। विना इन दो कामनाओं के कोई नहीं होता है। इसलिए हम यह कह सकते हैं कि कोई भी ऐसा कर्म नहीं हो सकता जिसके पीछे लौकिक या मोक्ष कोई भी कामना न हो।

www.thearyasamaj.org

अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित् ।
यद् यद् हि कुरुते किंचित्तत्तत्कामस्य चेष्टितम् । (मनु. १.६१)

भावार्थः- क्योंकि जो-जो हस्त, पाद, नेत्र, मन आदि चलाये जाते हैं वे सब कामना ही से चलते हैं जो इच्छा न हो तो आँख का मीचना भी नहीं हो सकता।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।। (गीता ३/५)

अर्थः- निस्संदेह कोई भी मानव किसी भी अवस्था में क्षण मात्र भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता; क्योंकि प्रकृति जनित गुणों के पराधीन होकर प्राणी मात्र को कर्म करने ही पड़ते हैं।

प्रश्न २५ :- मनुष्य के द्वारा जिस स्वरूप वाला व जिस मात्रा/स्तर वाला अच्छा या बुरा कर्म किया जाता है तो क्या उसे फल भी उसी स्वरूप व उसी मात्रा /स्तर वाला मिलता है?

उदाहरण- किसी ने किसी को रोटी, कपड़ा, रुपये आदि दिये तो क्या उसे उसी मात्रा में रोटी, कपड़ा, रुपये आदि मिलेंगे? किसी ने किसी को गाली निकाली, थप्पड़ मारा, हाथ तोड़े या हत्या कर दी; तो क्या उसे उसी रूप में गाली मिलेगी, वह भी थप्पड खाएगा, हाथ तुड़वाएगा?

उत्तर :- प्रत्येक अच्छे-बुरे कर्म का फल कितनी मात्रा में सुख-दुःख रूप में मिलेगा, यह ईश्वर ने अनादि काल से निश्चित कर रखा है। प्रत्येक जीवात्मा को उसी निर्धारित मात्रा के अनुसार ईश्वर कर्मों का फल प्रदान करता है। किन्तु प्रत्येक अच्छे-बुरे कर्म का फल अलग-अलग मात्रा में नहीं दिया जाता बल्कि सभी अच्छे बुरे कर्मों को मिलाकर फिर निर्धारण किया जाता है कि सबका सम्मिलित रूप में किस रूप में, किस मात्रा में, फल दिया जाये?

उदाहरण के लिए एक मनुष्य ने जीवन में जितनी हिंसा की, जितना झूठ बोला, जितनी चोरी की, जितना दुराचार किया, लोभ किया आदि सभी बुरे कर्मों को मिलाकर उनकी एक राशि (समूह) बन जाती है। उन सब बुरे कामों को मिलाकर इन सबका दुःख किस रूप में किस स्तर का दिया जाये यह ईश्वर द्वारा निर्धारित किया जाता है।

www.thearyasamaj.org

थप्पड़ मारने का फल, थप्पड़ के रूप में मिलता हो और हाथ काटने का, हाथ काटने के रूप में, १०००/- रुपये का चोरी का फल १०००/- रुपये चोरी के रूप में ही मिलेगा, ऐसा नहीं है। अपितु सभी काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या-द्वेष, अहंकार, झूठ, छल-कपट आदि बुराइयों को संगृहीत करके किसी शरीर, आयु, भोग के रूप में मिलता है।

जैसे सांख्य में लिखा है - **कर्म वैचित्र्यात् सृष्टिवैचित्र्यम्।** (६/४१)

उदाहरण- किसी व्यापारी ने किसी अन्य व्यापारी से साल भर में ५० प्रकार की भिन्न-भिन्न वस्तुएँ १०-२० बार अलग-अलग खरीदी । कुल मिलाकर ७०० प्रकार की वस्तुएँ हुईं। वर्ष के अन्त में हिसाब करते समय खरीदने वाला व्यापारी प्रत्येक वस्तु का अलग बिल नहीं चुकाता है बल्कि सभी वस्तुओं के बिलों को मिलाकर जितना योग होता है वह एक साथ चुका देता है। यही स्थिति कर्म के फल के विषय में जाननी चाहिये।

प्रश्न २६ :- मनुष्य को जो सुख-दुःख मिलता है क्या वह अपने ही कर्मों का फल है या किसी अन्य के भी कर्म के कारण सुख-दुःख प्राप्त कर सकता है?

उत्तर :- सिद्धान्त यह है कि मनुष्य को अपने ही कर्मों का फल मिलता है दूसरे के कर्मों का नहीं, किन्तु दूसरे के कर्मों के परिणाम व प्रभाव से सुख-दुःख की प्राप्ति कर सकता है। आज के लोगों में यह धारणा दृढ़ता से बैठी हुई है कि मनुष्य जो कुछ भी सुख-दुःख भोगता है वह अपने ही कर्मों का फल होता है। जब भी कोई दुःखदायी घटना घटती है तो सभी लोग यह कहकर सान्त्वना देते हैं "कि ऐसा लिखा था, इसने कभी बुरा किया होगा जो अब फल के रूप में मिल रहा है"। किन्तु यह सर्वांश में सत्य नहीं है।

मनुष्य अपने कर्मों के अतिरिक्त अन्यों के किये कर्मों से भी परिणाम-प्रभाव के रूप में प्राप्त सुख-दुःख को भोगता है।

उदाहरण १. - किसी घर में घुसकर चोरों ने चोरी की। ५०००/- रुपए की सम्पत्ति लेकर भाग गये। घर के सदस्य चोरी होने से दुःखी हो गए। यह जो दुःख है यह चोरी हो जाने से हुआ है। चोरी रूप बुरा कर्म तो चोरों ने किया, अतः इस बुरे कर्म का फल भी चोरों को ही मिलेगा। यही सिद्धांत है कि जो कर्त्ता होगा वही भोक्ता होगा।

www.thearyasamaj.org

अतः घर के व्यक्तियों को जो चोरी हो जाने से दुःख हुआ यह चोरी का फल नहीं है। किन्तु इसे चोरी रूप दुष्टकृत्य का परिणाम या प्रभाव ही कहना चाहिये। फल तो चोरों को ईश्वर या राजा की ओर से बाद में मिलेगा।

इसलिए सिद्धान्त यह बनता है कि बुरा कर्म करने का फल तो कर्त्ता को ही समय पर ईश्वर से मिलेगा। किन्तु उस बुरे कर्म का परिणाम व प्रभाव दुःख रूप में अन्य व्यक्तियों पर भी पड़ सकता है।

उदाहरण २. – किसी व्यक्ति ने शीतकाल की ठण्डी रात्री में किसी भूखे-नंगे, निर्धन व्यक्तियों को भोजन कराया तथा ओढ़ने के लिए कम्वल बाँटे। निर्धन व्यक्तियों का दुःख दूर हो गया तथा वे सुखी हो गए। यह जो निर्धन व्यक्तियों को दानी से प्राप्त भोजन व वस्त्र से सुख मिला है वह अपने कर्मों का फल नहीं है; कर्म तो दानी व्यक्ति का है; जिसने दान किया है, फल भी उसी दाता को मिलेगा, फिर भी जो निर्धनों को सुख मिला वह दानी व्यक्ति के अच्छे कर्म का परिणाम व प्रभाव है।

इसलिए सिद्धान्त यह बनता है कि अच्छे कर्म करने का फल तो कर्त्ता को ही समय पर ईश्वर से मिलेगा, किन्तु उसके अच्छे कर्म का परिणाम-प्रभाव अन्य व्यक्तियों पर सुख रूप में पड़ सकता है।

प्रमाण – "अकर्तुरपि फलापोपभोगोऽन्नाद्यवत्" (सांख्य १-१०५)

बिना कर्म किये भी परिणाम दुसरे व्यक्ति को प्राप्त हो जाता है जैसे सेवक द्वारा बनाया गया भोजन सेठ द्वारा किया जाता है।

प्रमाण – शं नः सुकृतानि सन्तु (ऋग्वेद ७-३५-४)

अर्थः– अच्छे पुरुषों के उत्तम कर्म हमारे लिए सुखदायक व लाभकारी हों। इसलिए वैदिक सिद्धान्त यही बनता है कि अन्यों के कर्मों से अन्यों को लाभ या हानि अथवा सुख-दुःख दोनों पहुँचा करते हैं। कर्म फल तो कर्त्ता को ही मिलता है, किन्तु कर्म के परिणाम व प्रभाव से यह स्थिति होती है।

प्रश्न २७ :– किन्हीं शास्त्रों में लिखा है कि 'ज्ञानात् मुक्तिः' ज्ञान से ही मुक्ति हो जाती है। तो फिर कर्म करने की आवश्यकता ही क्या है?

उत्तर– यह सत्य है कि शास्त्र में लिखा है कि ज्ञान से मुक्ति होती है किन्तु इसका अर्थयह नहीं लेना चाहिये कि मुक्ति की प्राप्ति के लिए

www.thearyasamaj.org

कर्म व उपासना को नितान्त छोड़ दें। 'केवल ज्ञान प्राप्त ही करते रहो' वहाँ उस प्रकरण में केवल ज्ञान की प्रधानता बतायी गई है। न कि एकाकीपन। ध्यान देने की बात है कि बिना कर्म के ज्ञान की भी प्राप्ति नहीं हो सकती और ज्ञान प्राप्त करके व्यवहार में न लावें, उपासना न करें तो ज्ञान का कोई लाभ भी नहीं होता है। ज्ञान होता ही इसलिए है कि उसे व्यवहार में लाया जाये।

यदि 'ज्ञानात् मुक्ति' से मात्र ज्ञान लिया जाये कर्म को छोड़ना अर्थ लिया जाये तो फिर वेद से विरोध उत्पन्न होगा। वेद में कहा है कि **अकर्मा दस्युः....। (ऋ०. १०-१२-८)** जो कर्म नहीं करता वह दस्यु है। **कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।। (यजु. ४०-२)** हे मनुष्य ! तू कर्म करता हुआ सौ वर्ष तक जीने की इच्छा कर। गीता में भी अनेकत्र भगवान कृष्ण ने कर्म करने का आदेश दिया है।

०. **तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।। (गी. ३-१६)**

०. **शरीर यात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः। (गी. ३-८)**

कर्म के बिना तो शरीर को जीवित रखने के लिए खाने पीने, पहनने को भी नहीं मिलता। वैदिक सिद्धान्त के अनुसार यथार्थ ज्ञान, शुध्द (निष्काम) कर्म तथा समर्पितभाव युक्त शुध्द उपासना करने पर ही व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त होता है, केवल ज्ञान से मुक्ति नहीं होती है।

प्रश्न २८ :- क्या शुभ व अशुभ कर्म बराबर किये जाएँ तो वे बिना ही फल दिए नष्ट हो सकते हैं?

उत्तर :- मनुष्य प्रत्येक विषय में पूर्ण ज्ञानी न होने के कारण अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कर्म करता है। दोनों प्रकार के कर्मों का अपना अलग अस्तित्व है। दोनों का अलग-अलग सुख-दुःख रूप में फल मिलता है। अच्छे कर्मों का फल सुख तथा बुरे कर्मों का फल दुःख मिलता है। वैदिक कर्म मीमांसा के अनुसार अच्छे-बुरे कर्मों में जमा घटा अर्थात् प्लस (+) माईनस (-) नहीं होते।

उदाहरण (१) ऐसा नहीं होता कि किसी ने १०० अच्छे कर्म किए हों तथा २० बुरे कर्म किए हों तो १०० अच्छे कर्म में से २० बुरे कर्म कटकर अगले जन्म में फल देने के लिए केवल ८० शुभ कर्म ही बचे रह जाएँ।

(२) किसी ने १०० बुरे कर्म किये हों और २० अच्छे कर्म किए हों तो २० बुरे कर्म अगले जन्म में फल देने के लिए बच जाएँ ऐसा भी

www.thearyasamaj.org

नहीं होता। यदि ऐसा होता तो प्रत्येक प्राणी केवल सुखी या केवल दुःखी होता। परन्तु संसार में ऐसा दिखाई नहीं देता। यहाँ तो प्रत्येक मनुष्य, प्राणी सुखी व दुःखी सम्मिलित दिखाई देते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि पूर्व जन्म में किये गये अच्छे व बुरे दोनों प्रकार के कर्मों का फल मनुष्य को इसी जीवन में मिलता है।

इसलिए वैदिक दार्शनिक सिद्धांतों को जानकर हमें यह मिथ्या धारणा अपने मन से निकाल देनी चाहिये कि झूठ, छल, कपट, हिंसा, अन्याय, चोरी, जारी, विश्वासघात, मिलावट, रिश्वत, निन्दा, चुगली, अपमान, मिथ्या आरोप आदि बुरे कर्म जो किये हैं वे किसी भी प्रकार से दान, यज्ञ, तप, सेवा, परोपकार, प्रशंसा आदि करके नष्ट कर देगें या उनको घटाकर कम कर देंगे। चोरी, रिश्वत, डाके, छल, कपट से कमाये धन से दान, यज्ञादि परोपकार में लगा देने से पाप कर्म धुलते नहीं हैं। पापी व्यक्ति दानवीर बनकर, अपनी प्रशंसा करवाकर, फोटो छपवाकर, गुणगान करवाकर, मालाएँ पहनवाकर विशुद्ध धर्मवीर नहीं बन जाता। हाँ जो उसने अच्छे कर्म किये हैं उनका फल तो उसे सुख रूप में अच्छा ही मिलेगा । किन्तु बुरे कर्मों का भी फल उसे हर हालत में अवश्य ही भोगना पड़ेगा।

तर्क – किसी जीव के पाप-पुण्य बराबर मात्रा में होते हैं और एक दूसरे से घटकर शून्य हो जाते हैं, तो फिर उस जीवात्मा का क्या होगा? कौन सा जन्म मिलेगा? सुखदायी योनि मिलेगी या दुःखदायी? ऐसा भी क्यों? इन प्रश्नों का समाधान भी हो जायेगा।

प्रश्न २६ :– क्या निष्काम कर्मों का भी फल मिलता है?

उत्तर :– जी हाँ! निष्काम कर्मों का भी फल मिलता है। इस विषय में ध्यान रखने योग्य बात यह है कि निष्कामता का अर्थ यह नहीं होता कि कर्त्ता की कोई भी कामना न हो। प्रत्येक कर्म के पीछे कोई न कोई कामना तो होती ही है।

अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित्।
यद् यद् हि कुरुते किंचित्तत्तत्कामस्य चेष्टितम्। (मनु. १.६१)

निष्काम कर्म का अर्थ होता है जिस कर्म के पीछे लौकिक/सांसारिक/ऐन्द्रयिक सुखों की कामना न हो। धन, सम्पत्ति, पुत्र, पति-पत्नी आदि की कामना न होकर मोक्ष प्राप्ति की या ईश्वर के आनन्द की प्राप्ति की

www.thearyasamaj.org

कामना रहती ही है। इस प्रकार जब निष्काम कर्म ईश्वर की प्राप्ति या ईश्वरीय आनन्द की कामना रखकर किये जाते हैं तो उन का भी फल तो मिलना ही चाहिये। तो फिर प्रश्न हो सकता है कि निष्काम कर्मों का फल किस स्वरूप वाला होता है? इसका समाधान यह है कि निष्काम कर्म करने वाले व्यक्ति में जीव और प्रकृति का प्रकृष्ट विवेक उत्पन्न होता है। परिणाम स्वरूप उसका अन्तःकरण पवित्र हो जाता है और वह व्यक्ति ईश्वर को प्राप्त करने की योग्यता का सम्पादन कर लेता है।

प्रश्न ३० :- उपासना एक प्रकार का मानसिक कर्म है तो फिर उपासना को कर्म से भिन्न क्यों माना गया है? वह तो कर्म के क्षेत्र में ही आ जाएगी?

उत्तर :- उपासना का वास्तविक अर्थ 'ईश्वर के आनन्द में मग्न हो जाना, उसकी अनुभूति करना ही है। यह अनुभूति शरीर मन-इन्द्रियों के माध्यम से नहीं होती, आत्मा सीधे ही अपने सामर्थ्य से ईश्वर के साथ समाधि के माध्यम से सम्बन्ध जोड़कर आनन्द की अनुभूति करता है। इसलिए यथार्थतः उपासना को मानसिक कर्म नहीं कह सकते। क्योंकि यह कर्म की परिभाषा वाले क्षेत्र में नहीं आता है। तो फिर शंका उठती है कि योगाभ्यासी साधक के द्वारा जो संध्या समय में जप, ध्यान, चिन्तन, स्तुति, प्रार्थना आदि मानसिक क्रियाएँ की जाती हैं वह तो कर्म की ही श्रेणी में आ जायेगी, फिर उन्हें क्यों उपासना कहा जाता है? इसका समाधान यह है कि 'ईश्वर के आनन्द में मग्न होने से पूर्व तक जो भी क्रियाएँ की जाती हैं वे सभी मानसिक कर्म की ही कोटि में आ जाएँगी पुनरपि इन सभी मानसिक कर्म की क्रियाओं; जो उपासना के साधन अष्टांग योग यम-नियमादि बताये गये हैं के अन्तर्गत आ जाने से गौण रूप से उपासना कह दिए जाते हैं। वास्तव में ये क्रियाएँ उपासना नहीं हैं।

प्रश्न ३१ :- जीवन मुक्त व्यक्ति अपने बचे शुभ-अशुभ कर्मों का फल भोगता है या नहीं?

उत्तर :- जी हाँ भोगता है। जीवन मुक्त मनुष्य उस को कहते हैं जिसने ईश्वर साक्षात्कार कर लिया हो तथा ईश्वर से समाधि अवस्था में प्राप्त विशेष ज्ञान-विज्ञान से अविद्या के समस्त संस्कारों को दग्धबीज अवस्था में नष्ट कर दिया हो। ऐसे व्यक्ति का यह शरीर अन्तिम होता है।

www.thearyasamaj.org

इस शरीर के नष्ट होने के पश्चात् आगे कोई नया शरीर नहीं मिलता है। वह जीवात्मा समस्त प्राकृतिक बन्धनों से मुक्त होकर ईश्वर के निकट मोक्षानन्द की अनुभूति करता है। ऐसा जीवन मुक्त मनुष्य जितने साल तक जीवित रहता है तब तक इसी जीवन में अपने अवशिष्ट कर्मों को भोगता रहता है शेष कर्म जो बच जाते हैं उन्हें वह मुक्ति की समाप्ति के पश्चात् जब पुनः मनुष्य शरीर धारण करता है तब भोगता है। इस विषय से सम्बन्धित एक वैदिक सिद्धान्त का परिज्ञान रखना चाहिये वह यह है कि मुक्त जीवात्मा के अविद्या के संस्कार तो सारे नष्ट हो जाते हैं किन्तु कर्म फिर भी अवशिष्ट रहते हैं। सारे कर्म किसी भी जीवात्मा के द्वारा नहीं भोगे जाते हैं। मुक्तावस्था में विद्यमान जीवात्मा के भी कुछ न कुछ तो शुभाशुभ कर्म शेष रहते ही हैं। उन्हीं के कारण मुक्ति काल का आनन्द भोगकर वह पुनः मनुष्य शरीर धारण करता है।

प्रश्न ३२ :- नियत विपाक कर्मों; जिन कर्मों का फल मिलना निश्चित् हो गया है ऐसे कर्म का फल जन्म धारण के समय ही एक साथ पूरा का पूरा मिल जाता है या बाद में भी मिलता रहता है?

उत्तर :- नियत विपाक कर्मों का फल जाति आयु और भोग के रूप में मिलता है; परन्तु यह जन्म के समय ही एक साथ नहीं मिलता। इस जन्म में किये गये सभी कर्मों का बड़ा महत्त्वपूर्ण फल अगले जन्म में जाति = शरीर के रूप में मिलता है। यह शरीर रूपी फल तो एक बार ही जन्म धारण के समय ही मिल जाता है। नियत विपाक का दूसरा फल आयु के रूप में मिलता है। यह आयु = जीवनकाल पूर्व कर्मों के अनुसार निश्चित होती है किन्तु वर्तमान के कर्मों के परिणाम व प्रभाव से इसे घटा या बढ़ा भी सकता है। इसका वर्णन अन्यत्र प्रश्न में किया गया है वहाँ देखें। नियत विपाक कर्मों का तीसरा फल 'भोग' होता है। भोग का तात्पर्य यहाँ पर जिन साधनों से मनुष्य /प्राणी को सुख-दुःख की प्राप्ति होती है उनका ग्रहण करना चाहिये। यथा भोजन, वस्त्र, भवन, सोना-चांदी, भूमि, रुपया-पैसा आदि। यह भोग भी मनुष्य वर्तमान के कर्मों के परिणाम-प्रभावों से घटा-बढ़ा भी सकता है।

सिद्धान्त यह बना कि नियत विपाक कर्मों का फल जन्म धारण के समय भी मिलता है और आगे जीवन भर यथा अवसर शरीर इन्द्रिय, मनादि से किये गए कर्मों से प्राप्त धनादि के माध्यम से मिलता ही रहता है।

www.thearyasamaj.org

प्रश्न ३३ :- जीव कर्म करने में तो स्वतंत्र है परन्तु फल भोगने में परतंत्र क्यों?

उत्तर :- जीवात्मा अपने कर्मों का फल भोगने में परतन्त्र है इसका कारण निम्न है, प्रथम-

जीवात्मा स्वयं कर्मों का फल ले नहीं सकता क्योंकि उसका ज्ञान तथा सामर्थ्य बहुत कम है। जीवन भर तक शरीर, वाणी, मन द्वारा कितने कर्म किये हैं उन सबको वह याद नहीं रख सकता। जब कर्म का ही पूरा-पूरा निर्णय नहीं कर सकता तो फल कैसे ले सकता है ? और फल को प्राप्त करने के लिए पशु, पक्षी, मनुष्यादि का शरीर चाहिये तथा वृक्ष, वनस्पति, फल, अन्नादि खाद्यान्न भी चाहिए, साथ ही पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रादि ग्रह, उपग्रह चाहिएँ। इन साधनों के बिना जीव अपने कर्मों का फल भोग नहीं सकता। किन्तु जीवात्मा का ज्ञान व सामर्थ्य इतना न्यून है कि वह इन सब पदार्थों का निर्माण नहीं कर सकता।

इसके अतिरिक्त कोई भी जीवात्मा अपने बुरे कर्मों के दुःख रूप फल लेना भी नहीं चाहता है। यह संसार में स्पष्ट देखते हैं कि कोई भी चोर चोरी करके स्वयं जेल में नही जाता और न कोई हत्यारा या डाकू स्वयमेव फांसी पर लटकना चाहता है इसलिए जीवात्मा न तो स्वयं अपने अच्छे-बुरे कर्मों की परिगणना करता है और न वह अपने कर्म फलों को प्राप्त करने के लिए साधनों को बना सकता है; न बुरे कर्मों का फल स्वयं प्राप्त करना चाहता है। इसलिए ईश्वर ने फल देने की व्यवस्था अपने अधिकार में रखी है।

प्रमाणः- कोऽदात्कस्माऽअदात्कामोऽदात्कामायादात्।
कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते ।। (यजु. ७/४८)

भावार्थः- इस संसार में कर्म करने वाले जीव और फल देने वाला ईश्वर है।

प्रश्न ३४ :- क्या कर्मों का फल जीव स्वयं भी ले सकता है?

उत्तर :- इस विषय में एक बात जान लेनी आवश्यक है कि "फल भोगने में जीवात्मा परतन्त्र है" इसका अर्थ यह नहीं लेना चाहिए कि जीवात्मा सर्वथा परतन्त्र है और अपने किसी भी कर्म का फल वह नहीं ले सकता। किन्हीं-किन्हीं कर्मों को फल जीवात्मा स्वयं ले सकता है। यथा किसी के प्रति मन में द्वेष उत्पन्न किया, अनिष्ट चिंतन किया तो ऐसे कर्म का फल वह मौन रहकर या गायत्री मंत्र का जप करके ले

www.thearyasamaj.org

सकता है। अथवा दोनों प्रकार से ले सकता है। इसी प्रकार किसी के प्रति हिंसा करने पर अथवा किसी कार्य में आलस्य-प्रमाद करने पर, अथवा किसी कार्य को करने के दायित्व को भूल जाने आदि दोषों के प्रति भोजन छोड़कर, सेवा करके स्वयं भी फल ले सकता है। अथवा किसी की कुछ हानि कर देने पर जितने मूल्य की हानि हुई उतने रुपयों से क्षति पूर्ति करके भी दण्ड ले सकता है। इसमें जो न्यूनता अधिकता रह जाएगी तो परमात्मा आगे उसका यथायोग्य संतुलन बना देगा।

प्रश्न ३५ :- जब कर्मों का फल अवश्य ही मिलता है उनसे कोई बच नहीं सकता तो फिर ईश्वरोपासना करने की क्या आवश्यकता है?

उत्तर :- यह बात सत्य है कि किये गये कर्मों का फल अवश्य मिलता है। चाहे कितना ही जप-तप करो, कितने ही यज्ञ-दान करो, फिर भी उपासना की आवश्यकता इसलिए है कि उपासना करने से ईश्वर की ओर से विशेष ज्ञान, बल, आनन्द, धैर्य, सहनशक्ति, निष्कामता, उत्साह, पराक्रम, दयालुता, न्यायकारिता आदि गुणों की प्राप्ति होती है। ईश्वरोपासना से ईश्वर के प्रति प्रेम, श्रद्धा, निष्ठा, रुचि आदि बढ़ते रहते हैं। उपासक की बुद्धि कुशाग्र होती है, स्मृति तीव्र होती है, एकाग्रता बढ़ती है, इन्द्रियों पर नियंत्रण होता है, मन पर अधिकार होता है, अज्ञानजनित कुसंस्कारों को जानने, उनको दबाने, निर्बल बनाने तथा उन्हें नष्ट करने का सामर्थ्य प्राप्त होता है और जब साधक यम-नियम का सूक्ष्मता से पालन करता है तब जीवन शान्त, प्रसन्न, सन्तुष्ट, निर्भीक बनता है। आगे चलकर आत्मा का परिज्ञान होता है, समाधि लगती है पुनः आगे ईश्वर का साक्षात्कार होता है और व्यक्ति समस्त दुःखों से छुटकर मोक्ष को प्राप्त होकर मोक्ष में चला जाता है। इसलिए शुभ कर्मों को करते हुए साथ-साथ ईश्वर की उपासना भी अवश्य करनी चाहिये।

प्रश्न ३६ :- क्या मुक्ति में जीव कर्मों को करता है और क्या उनका फल मिलता है?

उत्तर :- मुक्ति में जीव कर्म नहीं करता है। क्योंकि कर्म की परिभाषा मुक्ति में लागू नहीं होती है। शरीर-इन्द्रिय-मन से की जाने वाली चेष्टा विशेष को कर्म के अन्तर्गत माना जाता है। ऐसे कर्मों से

www.thearyasamaj.org

कर्माशय बनता है और उस कर्माशय से सुख-दुःख फल मिलता है। इस परिभाषा के अनुसार देखा जाये तो यही निर्णय निकलता है कि मोक्ष में जीव कर्म नहीं करता है क्योंकि मोक्ष में जीव के साथ शरीर-मन-इन्द्रिय नहीं होते हैं। जब ऐसे कर्म नहीं होते तो कर्माशय भी नहीं बनता और फल भी नहीं मिलता।

पुनरपि मोक्ष अवस्था में जीव इधर-उधर जाता आता है, विभिन्न वस्तुओं को देखता है, उनका ज्ञान-विज्ञान भी प्राप्त करता है। इससे लगता है कि मोक्ष में भी क्रियाएँ होती हैं। यह सब क्रियाएँ जीव बिना ही शरीर-मन-इन्द्रिय के ईश्वर की सहायता से करता है। इन क्रियाओं से ज्ञान की वृद्धि होती है परिणाम स्वरूप ज्ञान के बढ़ने से आनन्द भी बढ़ता है। इस दृष्टिकोण से कह सकते हैं कि मोक्ष में भी जीव क्रिया करता है तथा उनका फल भी मिलता है। किन्तु ये सब क्रियाएँ सशरीर सृष्टि में किये जाने वाले कर्मों की श्रेणी में नहीं आती हैं।

प्रश्न ३७ :- क्या जीवनमुक्त व्यक्ति से मिश्रित (शुभाशुभ) कर्म होते हैं?

उत्तर :- जीं हाँ! जीवन मुक्त व्यक्ति भी मिश्रित कर्म करता है। यद्यपि यह जान-बूझकर योजना बनाकर हिंसा आदि कर्म नहीं करता। पुनरपि अज्ञानवशात्, शीघ्रता में, विना पूर्ण परीक्षण के कहीं न कहीं, किसी न किसी विषय में हिंसा, असत्य आदि का प्रयोग हो भी सकता है तथा जीवन मुक्त व्यक्ति भी शरीर धारी है। शरीर से चलने, फिरने, खाने-पीने से सम्बन्धित अनेक क्रियाएँ करता है। इन सभी क्रियाओं को करने में कुछ न कुछ तो हिंसा आदि कर्म हो ही जाते हैं। शास्त्रकार ने भी कहा है कि **"नानुपहत्य भूतानि भोगः सम्भवतीति।" (योगदर्शन व्यास भाष्य २.१५)** अर्थात् किसी प्रकार की हिंसा किए बिना भोगों व भोग सामग्री को प्राप्त करना संभव नहीं है इसलिए यही सिद्धान्त बनता है कि जीवन मुक्त व्यक्ति से अज्ञानादि कारणों से भी मिश्रित कर्म होते हैं।

प्रश्न ३८ :- अपने पाप कर्मों का दुःखरूप फल भोगने वाले व्यक्ति के दुःख दूर करने का प्रयास करना क्या ईश्वर की न्याय व्यवस्था में हस्तक्षेप नहीं है?

उत्तर :- रोगी, अभावग्रस्त, अनाथ, असहाय, निर्बल, दुःखी व्यक्तियों को तन, मन, धन आदि किसी भी प्रकार से सहायता करके

www.thearyasamaj.org

उनके दुःख को दूर करना; परमात्मा की व्यवस्था में हस्तक्षेप नहीं है क्योंकि ऐसे व्यक्तियों की सहायता करना उनके दुःखों को दूर करना प्रत्येक समर्थ व्यक्ति का कर्त्तव्य है। परमात्मा ने वेदों में, ऋषियों ने अपने ग्रंथो में इसका निर्देश कर रखा है।

यदि दुःखियों को सहायता करना परमात्मा की व्यवस्था में हस्तक्षेप माना जाएगा तो फिर समाज-राष्ट्र में परोपकार, सेवा आदि की सारी क्रियाएँ ही व्यर्थ हो जाएँगी। चिकित्सालय, अनाथालय आदि सेवा संस्थान व सेवा कार्य सभी व्यर्थ होंगे। कोई किसी की ओर देखे ही क्यों, जाने ही क्यों कि यह दुःखी है। ऐसी स्थिति में तो मनुष्य समाज पशु समाज की तरह घोर स्वार्थी बन जाएगा। ईश्वर ने जो अन्धे, लूले, लंगड़े, अपाहिज, निर्बल, रोगी, निर्धन, अज्ञानी बनाए हैं उनका दण्ड उनको ऐसा बनाने तक ही सीमित है। लंगडे को चिकित्सा करके उसे ठीक करना परमात्मा की फल व्यवस्था में हस्तक्षेप नहीं है अपितु पुण्यार्जन है।

प्रमाणः- शतहस्त समाहर सहस्रहस्त संकिर। अथर्व.३/२४/५

भावार्थः- सैकड़ों व्यक्तियों का साथ लेकर धन सम्पत्ति और भोग्य साधनों को कमाओ और निर्बल, निर्धन, असहाय तथा आवश्यकता वाले हजारों व्यक्तियों में बाँटो।

प्रश्न ३९ :- मनुष्य कितनी अवस्था का होकर कर्म करना प्रारम्भ करता है?

उत्तर :- जब बालक अच्छे-बुरे कर्मों को समझने लायक हो जाता है तब से वह कर्माशय बनाने वाले सुख-दुःख रुप में फल देने वाले कर्मों को प्रारम्भ कर देता है। अथवा ऐसे कह सकते हैं कि जब से बालक होश संभाल लेता है तब से यह कार्य शुरु हो जाता है। अच्छे बुरे की समझ कितनी अवस्था में आती है। इसका सामान्य निर्धारण ५ वर्ष से ८ वर्ष तक का कर सकते हैं। यह अवस्था तब से भी मानी जा सकती है जब से बालक बुरा कर्म करते हुए ईश्वर की ओर से भय, शंका, लज्जा की अनुभूति करे और अच्छा कर्म करते हुए ईश्वर की ओर से आनन्द, उत्साह, निर्भीकता की अनुभूति करे। अथवा ऐसा भी निर्धारण किया जा सकता है कि जिस अवस्था में बच्चों को काम करने पर ये हानियाँ होंगी ऐसे विधि निषेध की समझ आ जाए। सभी बच्चों

www.thearyasamaj.org

के लिए एक अवस्था का निर्धारण नहीं हो सकता। कुछ बच्चे ४ वर्ष की अवस्था में ही अच्छे समझदार हो जाते हैं तो कुछ ६-७ वर्षों में तो कुछ और अधिक वर्षों के पश्चात् होते हैं।

प्रश्न ४० :- क्या बिना ज्ञान के भी कर्म होते हैं?

उत्तर :- सामान्य सिद्धान्त तो यही है कि बिना ज्ञान के कर्म नहीं होते क्योंकि जो कुछ भी कर्म मनुष्य करता है वह इच्छापूर्वक करता है, और वह इच्छा सुखदायी पदार्थ को प्राप्त करने और दुःखदायी पदार्थ को छोड़ने स्वरूप होती हैं । इसलिए हम कह सकते है कि अधिकांश कर्म ज्ञानपूर्वक ही होते हैं। पुनरपि प्रत्येक मनुष्य, प्रत्येक दिन कुछ ऐसे कर्म कर लेता है जिसके विषय में उसको कुछ भी ज्ञान नहीं होता है कि कर्म किया या नहीं। यथा- चलते हुवे पाँव के नीचे आकर अनेक चीटियाँ या कीड़े-मकोड़े मर जाते हैं ।

प्रश्न ४१ :- क्या ज्ञान के बिना या अल्प ज्ञान से किए जाने वाले कर्मों का भी फल मिलता है?

उत्तर :- जी हाँ ! अज्ञान से किए गए कर्मों का भी फल ईश्वर द्वारा मिलता है; चाहे वे अच्छे हों या बुरे। क्योंकि उन कर्मों से अन्यों को सुख-दुख तो प्राप्त होता ही है। उदाहरण के लिए किसी व्यक्ति ने भारतीय दण्ड संहिता (INDIAN PENAL CODE) पढ़ी नहीं,वह अनपढ़ है, मूर्ख है और स्वार्थ लोभ आदि से प्रवृत्त होकर किसी अन्य के धन को चुरा लेता है। पुनः पुलिस द्वारा पकड़े जाने पर यह कहे कि मैं तो संविधान को जानता नहीं; पढ़ा लिखा नहीं हूँ। मुझे पता नहीं था कि चोरी करने पर दण्ड मिलता है, जेल जाना पड़ता है। मैं अज्ञानी हूँ; मुझे छोड़ दिया जाए,तो भी न्यायाधीश, पुलिस छोड़ेगी नहीं अपितु उसे जेल में डाल देगी।

इसी प्रकार ईश्वर को न जानने वाला अज्ञानी व्यक्ति गलत कार्य करे तो वह दोषी ही माना जाएगा और दण्ड का भागी होगा। जिस समाज में हम रह रहे हैं; उसके नियमों को जानना हमारा कर्त्तव्य है। वैसे ही जिस संसार साम्राज्य में हम रह रहे हैं; उसके नियम संविधान वेद को जानना हमारा कर्त्तव्य है। ''हमें पता नहीं है'' यह कहकर हम बच नहीं सकते। जैसे अग्नि ज्ञानवान् को जलाती है; वैसे ही अज्ञानी बालक को भी हाथ डालने पर जलाएगी। बिजली ज्ञानी अज्ञानी दोंनों को झटका देगी। घातक विष वैज्ञानिक को भी मारेगा और मूर्ख गंवार को भी, इसलिए यह तर्क नहीं बनता कि मैं तो अज्ञानी हूँ मुझे दण्ड नहीं मिलना चाहिए।

www.thearyasamaj.org

प्रश्न ४२ :- क्या जीव कर्म करते हुवे थक जाता है?

उत्तर :- नहीं, जीव कभी भी कर्म करता हुआ थकता नहीं है। शरीर, इन्द्रिय, मनादि जीव के करण (साधन) थकते हैं। क्योंकि ये शरीरादि करण प्रकृति से बने होते हैं, उनका सामर्थ्य, शक्ति सीमित होती है अतः थक जाते हैं और जीवात्मा के लिए बाह्य कार्यों को करना बन्द कर देते हैं। व्यवहार में कार्य करते हुवे यह कह दिया जाता है कि 'मैं थक गया' किन्तु वास्तव में जीव नहीं थकता, जीव के शरीरादि साधन थकते हैं। इस विषय में यह भी जानना चाहिये कि जीवात्मा सोता भी नहीं है। जीवात्मा के ये शरीर, मनादि उपकरण ही सोते हैं ।

प्रश्न ४३ :- क्या जीवात्मा के सारे के सारे कर्म भोगे जा कर कभी नितान्त समाप्त (शून्य) भी हो जाते हैं?

उत्तर :- ऐसा कभी नहीं होता कि किसी भी जीव का कर्माशय नितान्त रिक्त = शून्य स्थिति वाला हो जाए। जैसे जीवात्मा अनादि काल से अनन्त स्वरूप वाला है वैसे ही उसके कर्म भी हैं। जीव मनुष्य योनि में होता है तो अच्छे-बुरे बहुत से कर्म करता है। अच्छे कर्म अधिक होने पर मनुष्य योनि और बुरे कर्म अधिक होने पर पशु-पक्षी, कीट, पतंगादि की योनियों में ईश्वर द्वारा भेजा जाता है। वहाँ बुरे कर्मों का फल भोगने से वे कम होते रहते हैं। जब पाप-पुण्य ;अच्छे-बुरे कर्म बराबर (समान) हो जाते हैं तब पुनः मनुष्य शरीर को धारण करता है। मनुष्य योनि में फिर बहुत अधिक मात्रा में अच्छे-बुरे कर्म करता है और फल स्वरूप आगे विभिन्न योनियों को प्राप्त करता है।

योगाभ्यास करके जीव अपने सभी अविद्या के संस्कारों को नष्ट करके जीवन मुक्त अवस्था को प्राप्त होकर मोक्ष में चला जाता है, तब भी उसका कर्माशय बचा ही रहता है। इस कर्माशय के आधार पर ही उसे मुक्ति को भोगने के पश्चात् मानव देह मिलता है। इस देह में पुनः नये कर्म होने लगते है और कर्माशय में पर्याप्त कर्म हो जाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि किसी भी जीव के कर्म नितान्त शून्य-समाप्त कभी भी नहीं होते हैं ।

प्रश्न ४४ :- मनुष्य शरीर से भिन्न पशु-पक्षी कीट, पतंग आदि योनियों में भी जीव कर्म करता है या वे केवल भोग योनियां है?

www.thearyasamaj.org

उत्तर :- इस पृथिवी पर जीवात्माओं के तीन प्रकार के शरीर होते हैं। कर्मदेह, उपभोगदेह, उभयदेह।

प्रमाण-

त्रिधा त्रयाणां व्यवस्था कर्म देहोपभोगदेहोभयदेहाः।।

(सांख्य. ५/८४)

मनुष्य से भिन्न जितने भी पशु, पक्षी, कीट, पतंगादि हैं उन्हे केवल भोग योनि माना गया है। मनुष्य शरीर में जीव फल भी भोगता है और कर्म भी करता है किन्तु पशु शरीर में केवल फल ही भोगता है। क्योंकि उनके शरीरों में जो बुद्धि, मन आदि उपकरण लगे होते हैं उनका इतना सामर्थ्य नहीं होता कि वे अच्छे-बुरे की पहचान कर सकें इसलिए कर्म फल व्यवस्था मनुष्य के लिए लागू है पशु-पक्षियों के लिए नहीं। आहार, निद्रा, भय, मैथुन, रक्षा आदि पशुओं व मनुष्यों में समान है किन्तु कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, विधि-निषेध का नियम केवल मनुष्यों पर ही लागू होता है पशुओं पर नहीं। पशु जगत् में बड़ा प्राणी छोटे प्राणी को दबाता है, डराता है, मारता है, खा भी जाता है तो कोई पाप नहीं लगता किन्तु मनुष्य समाज में ऐसा कोई करे तो पाप माना जाता है।

मनुष्यों में विवाह आदि का नियम है परन्तु पशुओं में ऐसा कोई नियम नहीं होता। मनुष्यों में धर्म, नीति, सभ्यता, आचार, व्यवहार आदि से सम्बन्धित अनेक शास्त्रीय विधि-विधान नियम बने हैं किन्तु पशुओं के लिए ये नियम नहीं हैं। यद्यपि पशुओं को भोग-योनि कहा गया है किन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं लेना चाहिये कि इनमें किञ्चित् मात्र भी कर्म नहीं होता या किञ्चित् मात्र भी ज्ञान नहीं होता। पशु-पक्षियों को भी ज्ञान होता है किन्तु वह केवल शरीर की रक्षा, भोग आदि करने के लिए सीमित मात्रा में होता है और एक जाति के सभी पशुओं का; प्रायः समान स्थिति वाला होता है। यथा बया को घोंसला बनाने का, मधुमक्खी को छत्ता बनाने का, मछलियों को तैरने का, पक्षियों को उड़ने का, कुत्ते-भेड़ियों को माँद बनाने का होता है।

कुछ विशेष जाति के पशु कुत्ते, भेड़िया, बन्दर, भालू, तोता, घोड़ा, सिंह, हाथी आदि को विशेष प्रशिक्षण देकर उनको नये कर्म करने के योग्य भी बनाया जाता है, जैसे कि पुलिस के कुत्ते, जो अपराधियों को सूंघकर पकड़ते हैं, सर्कस में हाथी, भालू, सिंह आदि या मदारी के पास

www.thearyasamaj.org

बन्दर आदि। इन पशुओं पर यद्यपि शास्त्रीय नियम लागू नहीं होता किन्तु इसका तात्पर्य यह भी नहीं है कि उनका हर कार्य क्षम्य या अदण्डनीय होता है। कुत्ता, बिल्ली, गाय, भेड़ बकरी, हिरण, सुअर, सिंह आदि अपनी मर्यादाओं को तोड़कर मनुष्य को हानि पहुँचाते हैं तो इनको भी दण्ड मिलता है। इसलिए पशुओं के विषय में यह सिद्धान्त है कि मुख्यरूप से इनकी भोग योनि है; किन्तु गौणरूप से कर्मों को भी करते हैं और उन कर्मों के अनुरूप वे फल भी प्राप्त करते हैं।

प्रश्न ४५ :- क्या वृक्ष, लता, गुल्म आदि योनियों में भी कर्म होते हैं?

उत्तर :- वृक्षादि योनियों की स्थिति, गतिविधि आदि को देखकर अधिकांश यही संभावना लगती है कि इन योनियों में पशु, पक्षी, कीट, पतंग की तरह कर्म नहीं होते हैं। ये योनियाँ मात्र अपने भोगों को ही भोगती हैं।

प्रश्न ४६ :- जब मनुष्य ने बुरे कर्म किये, परिणामस्वरूप फल भोगने के लिए पशु योनि में गया वहाँ पर कुछ वर्षों तक कुछ योनियों में बुरे कर्मों का फल भोगा। अब बुरे कर्म समाप्त होने पर वह मनुष्य योनि में कैसे आयेगा ? क्योंकि पशु योनि में उसने मनुष्य योनि की तरह अच्छे कर्म तो किये नहीं ?

उत्तर :- कर्म के विषय में ईश्वर की यह व्यवस्था है कि जब तक ५०% - ५०% अच्छे बुरे कर्म होते हैं तब तक जीव को मनुष्य योनि मिलती है अर्थात् ५०% से अधिक अच्छे कर्म होने पर वे चाहें ५५%, ६०% या ८०% हो, तब तक जीवों को उच्च, उच्चतर, उच्चतम स्तर की मनुष्य योनि ही मिलती रहती है। इसके विपरीत यदि ५०% से अधिक अर्थात् ५५%, ६०%, ७०%, ८०% बुरे कर्म होते हैं तो पशु, पक्षी आदि के रूप में निम्न, निम्नतर और निम्नतम स्तर की योनियाँ मिलती हैं। मनुष्य के अतिरिक्त निकृष्ट पशु, पक्षी आदि योनियों में जीवात्मा अपने बुरे कर्मों को भोग लेता है तो अच्छे बुरे कर्म पुनः बरावर हो जाते हैं और ईश्वर अपने नियम के अनुसार उस जीवात्मा को मनुष्य योनि में भेज देता है। मनुष्य योनि कर्मप्रधान योनि है, वहाँ वह जाकर अपनी इच्छा से पुनः अच्छे बुरे कर्म करता है।

उदाहरण :- मनुष्य सामान्य रूप में समाज में स्वतंत्र रहते हैं,

www.thearyasamaj.org

कमाते हैं, खाते-पीते हैं, इस प्रकार वह विविध भोग करते हैं। किन्तु एक मनुष्य जब हत्या, चोरी, डाका आदि बुरे कर्म करता है तो सरकार उसे कानून के अनुरूप १० वर्ष तक जेल में भेज देती है। जेल में वह सब प्रकार से परतंत्र हो जाता है। १० वर्ष पश्चात् जब उसकी सजा की अवधि पूरी हो जाती है तो पुनः छूटकर स्वतंत्र मनुष्य समाज में लौट आता है। ऐसे ही पशु योनि से मनुष्य योनि में लौटना समझना चाहिये।

प्रश्न ४७ :- क्या कुदिन व सुदिन भी होते हैं?

उत्तर :- दिन तो काल की सीमा का वाचक है। यह कोई चेतन वस्तु (तत्त्वात्मक) नहीं है जो अपना प्रभाव किसी पर डालती हो। सूर्योदय से सूर्यास्त तक का काल दिन कहलाता है और सूर्यास्त से सूर्योदय का काल रात्रि कहलाती है। यह अवधि न अच्छी होती है न बुरी। हाँ किसी दिन घटना विशेष के घट जाने पर वे दिन उस घटना विशेष से जुड़े होने के कारण विशेष दिन बन जाते हैं। यथा किसी दिन भूकम्प आ जाता है, तूफान आ जाता है, बाढ़ आ जाती है या शत्रु का आक्रमण हो जाता है तो उस दिन दुःख विशेष उत्पन्न हो जाने के कारण उस दिन को बुरा या कुदिन कहते हैं।

उसी प्रकार किसी दिन धन मिलता है, किसी कार्य में सफलता मिलती है या किसी के साथ मिलन होता है,किसी का जन्म होता है, बन्धन या ऋण से मुक्ति होती है अन्य कोई विशेष उपलब्धि होती है या लाभ होते हैं तो उस का खुशी उत्पन्न होने के कारण उस दिन को सुदिन या अच्छा दिन कह दिया जाता है।

वास्तव में किसी घटना विशेष के घटने के कारण वे दिन सुदिन या कुदिन कहलाते हैं न कि किन्हीं विशेष दिनों के कारण कोई अच्छी या बुरी घटना घटती है। जो लोग यह मानते हैं कि जब व्यक्ति के अच्छे दिन आते हैं तो जीवन में सुख शान्ति, स्वास्थ्य, धन, प्रतिष्ठा, सफलता आदि की प्राप्ति होती है, और बुरे दिन आते हैं तो जीवन में परिवार में दुःख, अशान्ति, रोग, वियोग, असफलता, अपयश आदि की प्राप्ति होती है; तो यह मान्यता नितान्त मिथ्या है। सत्य तो यही है कि अच्छे और बुरे दिन घटनाओं के अच्छे और बुरे घट जाने के कारण बन जाते हैं न कि अच्छे और बुरे दिनों के कारण अच्छी या बुरी घटनाएँ घटती हैं।

www.thearyasamaj.org

प्रश्न ४८ :- घर का स्वामी केवल अपने लिए तो कमा नहीं रहा है; वह तो सभी के लिए कमाता है और सबको खिलाता है तो फिर वह अकेला दोष का भागी क्यों होगा?

उत्तर :- क्योंकि घर के शेष व्यक्ति केवल भोक्ता हैं, आश्रित हैं, स्वयं कर्त्ता नहीं हैं, फल केवल कर्त्ता को ही मिलता है, यह कहा गया है। इसलिए उनको भोग करते हुए भी फल नहीं मिलेगा।

एक बात और इस विषय में ध्यान देने योग्य है कि परिवार के सदस्य बुध्दिमान् तथा धार्मिक हों और उनको इस बात का ज्ञान भी हो कि हमारा स्वामी घर का भरण पोषण करने वाला अनैतिक कार्यों (चोरी, झूठ, रिश्वत आदि) के द्वारा हमारा भरण पोषण कर रहा है तो उनका कर्त्तव्य है कि वे उसको उस कार्य से रोकें, अपना विरोध दर्शावें, समर्थन न करें। यदि वे ऐसा करते हैं तभी वे दोष से बचेगें। यदि नहीं तो मुख्य स्वामी के बुरे कर्मों का समर्थन करने से वे भी कुछ अंश में पाप के भागी होंगे और ईश्वर से दण्ड प्राप्त करेंगे।

प्रश्न ४९ :- क्या नये कर्मों का पुराने कर्म फल पर प्रभाव पड़ता है? अर्थात् किसी विधि से कर्म के फल को न्यून वा अधिक कर सकते हैं?

उत्तर :- नये कर्मों का पुराने कर्मों के फलों पर प्रभाव तो पड़ता है किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि कर्मो के फलों में कोई कमी हो जाती है। कर्मों का फल तो उतना ही भोगना पड़ता है। हाँ ज्ञान विज्ञान की प्राप्ति, सामर्थ्य की प्राप्ति से कर्मों का फल भोगते हुए व्यक्ति जो अनुभूति करता है उसमें न्यूनता व अधिकता हो जाती है।

यथा कोई बुरा कर्म करने वाला व्यक्ति हिंसा, चोरी, डाका, या अन्य कोई पाप कर्म करके उसके फल से बचने के लिए छिप जाता है या कहीं दूर भाग जाता है। अन्यत्र पुनः संयोग वशात् किसी सज्जन व्यक्ति के सत्संग, स्वाध्याय या शिक्षा, प्रेरणा से स्वाध्याय, अध्ययन, चिन्तन-मनन द्वारा अपने मन बुध्दि को सुसंस्कृत बना लेता है। जिन बुरे कर्मों को पहले अच्छा मान रहा था, वह उन्हें अब बुरा मानता है और स्वयं समाज, राजा, न्यायाधीश के समक्ष उपथित होकर सहर्ष दण्ड प्राप्त करने की प्रार्थना करता है। उस अपराधी को इस स्थिति में जब कारावास या अन्य प्रकार के परिश्रम का दण्ड मिलता है तो वह उतना

www.thearyasamaj.org

दुःखी नहीं होता है जितना कि उस काल में होता जिस समय उसका ज्ञान-विज्ञान कम था और पाप कर्म में वह लिप्त रहता था। अब ज्ञान विज्ञान की वृद्धि होने के कारण वह उस कष्ट (दुःख-प्रतिकूलता-बन्धन) को सरलता पूर्वक सहन कर लेता है; विशेष दुःखी नहीं होता। यह दुःख के अनुभव की कमी ज्ञान-विज्ञान की वृद्धि के कारण होती है। इस प्रकार का प्रभाव तो कर्म फलों के ऊपर पड़ सकता है। ऐसा संभव है किन्तु यह नहीं होता कि अच्छे नये कर्मों के करने से पिछले बुरे कर्मों का फल कम हो जाता है या समाप्त हो जाते हैं। कर्मों का फल तो पूरा ही मिलता है। उसमें न्यूनता अधिकता नहीं होती है।

प्रश्न ५० :- क्या ईश्वर बिना ही कर्म के किसी को सुख-दुःख देता है?

उत्तर :- नहीं ! ईश्वर बिना ही कर्मों के किसी व्यक्ति को अपनी ओर से सुख या दुख नहीं देता है; क्योंकि वह न्यायकारी है। न्यायकारी वही कहलाता है जो किसी को जितना जैसा कर्म किया हुआ हो उसके अनुसार ही फल देता हो। यदि कर्म की मात्रा या स्तर से कम या अधिक फल देता है तो वह न्यायकारी नहीं रहेगा बल्कि पक्षपाती हो जाएगा।

लोक में भी हम देखते हैं कि किसी श्रमिक को जिसका प्रतिदिन का १०० रु. पारिश्रमिक होता है तो उसे १५ दिन का कार्य करने पर १५०० रु. दिया जाना उचित है। यदि कोई उस राशि से कम या अधिक देता है तो उसे उचित नहीं माना जाता है। कई बार पुण्य भावना से भी सेठ आदि दाता पारिश्रमिक अधिक दे देते हैं पर यह दूसरों के कर्मों का परिणाम प्रभाव है ऐसा ईश्वर में घटित नहीं होता।

प्रश्न ५१ :- संकट काल में संकट से बचाने के लिए की गयी प्रार्थना से क्या ईश्वर विशेष ज्ञान-विज्ञान देता है ?

उत्तर :- हाँ ! यह संभव है कि संकट काल मे (हानि, वियोग, अपमान, मिथ्या आरोप, विश्वासघात, छल-कपट आदि प्रतिकूल परिस्थितियों में) जब मन में दुख विषाद उत्पन्न हो जाता है और व्यक्ति तब एकाग्र चित्त होकर एकान्त शान्त स्थान में मन को उन विषयों से रोककर परमेश्वर से उपयुक्त संकट की परिस्थिति का सामना करने के लिए या उसका समाधान निकालने के लिए या उसे सहन करने के लिए प्रार्थना

www.thearyasamaj.org

करता है तो ईश्वर उसे ज्ञान, बल, साहस, पराक्रम, उत्साह, चातुर्य, धैर्य, सहनशक्ति आदि विशेष गुणों को प्रदान करता है। इन सब को प्राप्त करके वह उस संकट में घबराता नहीं है बल्कि उसका ठीक समाधान कर लेता है।

प्रश्न ५२ :- कर्मों को निष्काम बनाने के लिए क्या विधि अपनानी चाहिए?

उत्तर :- कर्मों को निष्काम बनाने की विधि बहुत ही सरल है। बस कर्मों के लौकिक फल की इच्छा समाप्त करते ही कर्म निष्काम बन जाते हैं अर्थात् मन में हम जो यह भावना रखते हैं कि मैं यह कर्म कर रहा हूँ मुझे इसका ऐसा फल मिलना चाहिए इसका ऐसा परिणाम होना चाहिए, इतना प्रभाव होना चाहिए मुझे लोग अच्छा समझेंगे, मेरी प्रशंसा करेंगे, मेरे फोटो छापेंगे, मुझे मालाएँ पहनाकर सम्मान करेंगे, मेरे शिष्य, अनुयायी बनेंगे, मेरी जयजयकार करेंगे, मेरी कीर्ति दूर-दूर तक फैलेगी, मुझे धन देंगे, मेरी योजनाएँ सफल होगीं ये भावनाएँ सकामता कहलाती हैं इनसे युक्त कर्म सकाम होते हैं अतः इन भावनाओं को छोड़कर मुझे ईश्वर की प्राप्ति करनी है। ऐसा मानकर चलने से कर्म निष्काम होन लगते हैं।

इसके लिए अन्य प्रकार से भी उपाय करने चाहिए यथा-

१. मुझे केवल ईश्वर की आज्ञा के अनुसार कर्त्तव्य कर्मों को करना है।
२. मेरे पास जो भी शरीर, धन, विद्या, बल आदि साधन है उन सबका निर्माता, रक्षक, स्वामी ईश्वर है, मैं नहीं हूँ, मैं इन सबका प्रयोक्ता मात्र हूँ।
३. उपर्युक्त सभी साधनों का प्रयोग ईश्वराज्ञा अनुसार करूँगा स्वेच्छा से अथवा जैसे समाज में अन्य व्यक्ति कर रहे हैं ऐसा नहीं करूँगा।
४. शरीर, बुद्धि, धन आदि सभी साधनों का प्रयोग मैं ईश्वर की प्राप्ति के लिए ही करूँगा लौकिक उद्देश्य धन, मान, प्रतिष्ठा के लिए नहीं करूँगा।
५. कर्म करते हुए यह विचार बनाना चाहिए कि ईश्वर मेरे में हैं, ईश्वर मुझे देख, सुन, जान रहा है।
६. कर्म करने के उपरान्त जैसा भी परिणाम, प्रभाव, फल मिले उसमें सन्तुष्ट रहना। मन में किसी भी प्रकार का शोक, चंचलता, चिन्ता आदि उत्पन्न नहीं करना चाहिए।

www.thearyasamaj.org

७. ईश्वर से मन ही मन यह प्रार्थना करना कि हे परमेश्वर ! मैं यह कार्य करने जा रहा हूँ मुझे आप ऐसा सामर्थ्य, उत्साह, प्रेरणा प्रदान करें कि मैं अपनी ओर से ऐसी कल्पना न करुँ कि मुझे इस कर्म का यह फल मिले। मैं तो केवल कर्त्तव्य भावना से कार्य करुँ ऐसी बुध्दि बनाओ।
८. मन में यह दृढ़ विश्वास बनाना कि जब ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वहितकारी, न्यायकारी, कर्मफलदाता है और वह जानता है कि किस कर्म का फल कब कितना और किस प्रकार से देना है तथा ईश्वर की ओर से मेरे द्वारा किए गए उत्तम कर्मों का फल शीघ्र या विलम्ब से न्यायपूर्वक मिलना ही है और कोई व्यक्ति इसे रोक भी नहीं सकता है तो फिर मैं अपनी अल्पबुध्दि से मुझे इतना फल मिले, ऐसा मिले, इस समय मिले, ऐसी कामना क्यों करुँ?
९. सभी साधन ईश्वर प्रदत्त हैं तो उनसे प्राप्त सफलता का श्रेय मैं क्यों लूँ, यह तो ईश्वर को मिलना चाहिए। ऐसा विचार करके कर्म करने चाहिएं।

प्रश्न ५३ :- क्या नास्तिक व्यक्ति निष्काम कर्मों को कर सकता है? क्या अच्छे काम करने वाले को उपर्युक्त फल नहीं मिलते है? यदि मिलते हैं तो फिर ऐसा विचार करने में क्या हानि है; बिना विचारे तो कोई अच्छे कार्यों में प्रवृत्त भी नहीं होता है।

उत्तर :- नास्तिक व्यक्ति किसे कहते हैं पहले यह समझना चाहिए। मोटे रूप से जो ईश्वर, आत्मा, पुनर्जन्म, कर्मफल, धर्माधर्म आदि वैदिक सिध्दान्तों को नहीं मानता है; वह 'नास्तिक' कहलाता है। नास्तिक व्यक्ति ईश्वर को तो जानना, प्राप्त करना नहीं चाहता; क्योंकि उसे मानता ही नहीं अतः निष्कामता का प्रथम उद्देश्य ईश्वर प्राप्ति तो उसका होगा ही नहीं। दूसरा उद्देश्य फल की ही भावना न करना है वह कदाचित् किंचित मात्रा में किन्हीं कर्मों में हो भी सकती है। अपनी सन्तान, परिवार, समाज, राष्ट्र के लिए नास्तिक लोग भी किंचित् मात्रा में निष्कामता को अपनाते हैं; ऐसा देखने में आता है कि अपनी सेवा, परोपकार के कार्यों का फल स्वयं न चाहकर अन्यों के सुख के लिए चाहता है; तो इतने अंशों में निष्कामता नास्तिको में भी शक्य है, पूर्ण रूप से नहीं। क्योंकि पूर्ण निष्कामता के लिए जिस ज्ञान विज्ञान को व्यक्ति को प्राप्त करना पड़ता है वह उसे प्राप्त नहीं होता, होता भी है तो उसे स्वीकार नहीं करता है।

www.thearyasamaj.org

यह सत्य है कि अच्छा काम करने वालों को यश, मान, धन, प्रतिष्ठा आदि सभी मिलते हैं किन्तु सबको नहीं मिलते; परिणामस्वरूप व्यक्ति हताश निराश होकर दुःखी हो जाता है। सकामता से एक दोष यह भी आता है कि व्यक्ति मिथ्या अभिमानी भी बन जाता है। वह ऐसा कि मैं ही सब कर रहा हूँ, अपनी बुध्दि से सब कुछ कर रहा हूँ। अपनी सामर्थ्य से कर रहा हूँ। वास्तव में व्यक्ति ईश्वर प्रदत्त शक्ति,ज्ञान, सामर्थ्य, साधनों तथा प्रेरणा से करता है। स्वयं तो जीव का सामर्थ्य तो बहुत कम है।उतने से वह कर्मों को नहीं कर सकता। इसलिए यह विचारना चाहिए कि जो कुछ मेरे पास ज्ञान, बल, सामर्थ्य साधनादि है वह ईश्वर प्रदत्त है तथा उसी की आज्ञा से तथा उसी को प्राप्त करने के उद्देश्य से कर्म. को कर रहा हूँ। अपने को मात्र कर्त्ता समझना चाहिए।

प्रश्न ५४ :- क्या कर्म स्वयं ही (बिना ईश्वर के) फल दे सकता है ? कर्म जब क्षण में समाप्त होकर नष्ट हो जाता है तो ईश्वर भी कैसे कर्मों का फल देगा ?

उत्तर :- बिना ही ईश्वर के स्वयं कर्म, कर्म के कर्त्ता-जीव को कर्मों का फल दे देता हो ऐसा संभव नहीं है। क्योंकि कर्म तो एक क्रिया का नाम है जो एक क्षण में होकर समाप्त हो जाता है। कर्म जब स्वयं ही रहता नहीं है तो फल क्या देगा ?

जब जीव कर्म करता है तो उसका ज्ञान ईश्वर को हो जाता है। किए हुए कर्म के ज्ञान के संस्कार के आधार पर ही ईश्वर जीव को फल देता है। इतना तो कहना सत्य है कि जीव को फल देने मे कर्म आधार तो बनाते हैं; किन्तु स्वयं क्षणिक क्रिया रूप होने से फल नहीं दे सकते।

प्रश्न ५५ :- उपयोगितावाद (Utilitarianism) क्या वर्तमान काल में उपयुक्त है ?

उत्तर :- उपयोगितावाद का सरल सा तात्पर्य है अवसरवाद; अर्थात् अपने प्रयोजन को सिध्द करने के लिए जैसा करना उचित लगे वैसा कर लेना। यदि झूठ बोलना पड़े तो झूठ बोल देना, चोरी करनी पड़े तो चोरी कर लेना, छल-कपट करना पड़े तो कर लेना।

इन सिध्दान्त वादियों की ऐसी मान्यता है कि येन केन प्रकारेण उचित, अनुचित, धर्माधर्म विधि-विधान का ध्यान न देते हुए जो भी

www.thearyasamaj.org

करना पड़े वैसा करके कार्य की सिध्दि कर लेना यही 'उपयोगितावाद' है।

कहने सुनने में तो यह सिध्दान्त बड़ा ही रोचक, प्रेरक लगता है कि अपने कार्य की सिध्दि करो; चाहे कुछ भी करना पड़े क्योंकि लक्ष्य प्राप्त करना ही मुख्य है, साधन गौण है। अब देखना है कि साध्य की प्राप्ति गलत साधन से ही हो सकती है या श्रेष्ठ साधनों से भी ? जब यह प्रमाण द्वारा सिध्द है कि हिंसा, झूठ, छल-कपट,चोरी आदि साधन गलत हैं और इससे सर्वदा दुःख ही उत्पन्न होते हैं तो ये किसी भी परिस्थिति में नहीं अपनाने चाहिये।

प्रश्न ५६ :- क्या हिंसा, झूठ, छल-कपट, चोरी आदि से कभी लाभ भी हो सकता है ?

उत्तर :- नहीं; हिंसा, झूठ आदि यमनियमों के विरोधी कर्मो से लाभ कभी नहीं होता। क्योंकि जो हानिकारक, दुःखदायी, भयभीत करने वाले कर्म होते हैं; वे 'हिंसा' कहलाते हैं। अतः हिंसा होगी तो लाभ नहीं और लाभ हुआ तो हिंसा नहीं। लाभ का अर्थ है सुख, शान्ति, निर्भीकता, सन्तोष, स्वतन्त्रता आदि इन गुणों की उत्पत्ति। जिस कर्म से इन गुणों की उत्पत्ति होती हो तो वह हिंसा के अन्तर्गत नहीं आएगा।

प्रश्न ५७ :- परिवार, समाज, राष्ट्र में अनेक बार यह प्रतिदिन देखने में आता है कि लोग चोरी, मिलावट, दुराचार आदि अनैतिक पाप कर्मों को करके झूठ बोलकर बदनामी से बच जाते हैं, हानि, दण्ड से बच जाते हैं, मुकदमा जीत जाते हैं। फिर यह कैसे माना जाय कि झूठ बोलने से लाभ नहीं होता है। यदि झूठ बोलने से लाभ, बचाव नहीं होता तो लोग क्यों झूठ बोलते?

उत्तर :- यह बात यहाँ पर पुनः ध्यान देने की है कि कर्मो का फल अन्तिम रूप में ईश्वर ही देता है; मनुष्य नहीं। समाज में अधार्मिक, पापी व्यक्ति छल, कपट, हिंसा आदि बुरे कर्मों को करके उसको स्वीकार करने से होने वाले हानि/दण्ड से बचना चाहता है। इसका सरल उपाय झूठ दीखता है। यह ठीक है कि व्यक्ति झूठ से अपने दोषों को छुपा लेता है किन्तु उपाय सार्वकालिक नहीं है अपितु तात्कालिक ही है।

झूठ का उपाय वहीं पर चलता है जहाँ पर बुध्दिमान्, न्यायकारी,

www.thearyasamaj.org

प्रामाणिक विद्वान् लोग ठीक प्रकार परिश्रम के साथ सत्यासत्य का निर्णय नहीं करते। प्रमाणों का प्रयोग करने पर झूठ नहीं चल सकता; पकड़ा ही जाता है। झूठ वहीं पर चलता है जहाँ अज्ञानी लोग निर्णय करते हैं। संसार के न्यायालयों में झूठ चल भी जाता है किन्तु ईश्वर के न्यायालय में झूठ नहीं चलता। वहाँ तो दोष का दण्ड ब्याज सहित प्राप्त करना पड़ता है। झूठ का प्रयोग लोक में ऐसा ही है जैसे खाद्यान्न पकाने के लिए काठ की हांडी को प्रयोग करना या गोंद के स्थान पर पानी से कागज चिपकाना। थोड़ी देर में काठ की हाँडी जल जाती है और पानी के सूखने पर कागज दीवार से अलग हो जाता है। वैसे ही थोड़े काल के लिए तो झूठ चल जाता है; अधिकांश तो लोक में ही पकड़ा जाता है। यदि बहुत चालाकी से जीवन पर्यन्त पकड़ने में न भी आवे तो अन्त में ईश्वर के सामने तो चल नहीं सकता है इसलिए झूठ का उपयोग दोष से बचने के लिए अधार्मिक नास्तिक लोग ही करते हैं; धार्मिक आस्तिक नहीं। धार्मिक आस्तिक व्यक्ति तो झूठ, दोष, त्रुटि करके स्वतः दण्ड ग्रहण करते हैं, या अन्यों से देने की याचना करते हैं, उससे बचते नहीं।

प्रश्न ५८ :- भाग्य और पुरुषार्थ में क्या भेद है, दोनों में कौम बड़ा है ?

उत्तर :- दार्शनिक दृष्टि से भूतकाल में किये कर्मों का फल जाति, आयु, भोग के रूप में मिलना 'भाग्य' कहलाता है और जो वर्त्तमान में कर्म किये जा रहे हैं वह 'पुरुषार्थ' कहलाता है। उस पूर्व जन्म में किये कर्मो के आधार पर ईश्वर ने हमें किसी देश के प्रान्त विशेष, नगर, गाँव विशेष के किसी परिवार विशेष में मनुष्य का जन्म दिया है; यह भाग्य है। माँ के पेट में बने शरीर, इन्द्रिय गोलकों के आधार पर पूर्व जन्मों के कर्मों के संस्कारों के आधार पर जो जो कार्य करने का सामर्थ्य, बल, साधन आदि मिलते हैं वे भी भाग्य के अन्तर्गत आते हैं।

भाग्य का दार्शनिक दृष्टि से उपर्युक्त स्वरूप ही है। किन्तु कुछ व्यक्ति भाग्य शब्द की व्याख्या भिन्न प्रकार से करते हैं। वे ऐसा मानते हैं कि मनुष्य ने पूर्व जन्म में जो कर्म किये उनका फल इस जन्म में मिलता है; उस फल में इस जन्म के किसी कर्म से कोई प्रभाव घट-बढ़

www.thearyasamaj.org

नहीं होती है। जितना जब जैसा मिलना होता है उतना अवश्य मिलता है; चाहे कोई उससे बचने के लिये कुछ भी करे। इस जन्म का फल अगले जन्म में मिलता है और पिछले जन्म का इस जन्म में तथा इस जन्म का इसी जन्म में नहीं मिलता। यह मान्यता सर्वांश में ठीक नहीं है। कुछ ऐसा भी कहते हैं कि जो मिलना है; लिखा है; उसे कोई रोक नहीं सकता और जो नहीं मिलना लिखा है उसे कोई किसी भी तरह प्राप्त नहीं कर सकता।

प्रश्न ५९ :- क्या किसी विशेष परिस्थिति में झूठ बोलना, चोरी करना, हिंसा करना शुभ कर्म होता है ?

उत्तर :- किसी भी परिस्थिति में झूठ, हिंसा, चोरी आदि यमनियम विरुध्द आचरण करना शुभ कर्म नहीं होता है।

प्रश्न ६० :- घर का स्वामी हिंसा, झूठ, चोरी, छलादि अनैतिक कर्मो से धन व साधनों को जुटाता है, भोग सभी परिवार के व्यक्ति करते हैं; क्या सभी को पाप लगेगा ?

उत्तर :- यह सिध्दान्त है कि फल कर्त्ता को ही मिलता है अन्यों को नहीं। घर में परिवार के स्वामी का परिवार के पोषण का दायित्व होता है तो कर्त्ता वही है; कर्म का फल उसको ही मिलेगा। शेष माता-पिता, पत्नी, बच्चे आदि उसके अधीनस्थ पराधीन हैं उन्हें फल नहीं मिलेगा। इस विषय मे शास्त्र कहता है -

एकः पापानि कुरुते फलं भुक्ते महाजनः।
भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्त्ता दोषेण लिप्यते।।

(महाभारत उद्योग पर्व ३३/४७)

अर्थात् :- कोई व्यक्ति झूठ, छल, हिंसा, चोरी, रिश्वत आदि अनैतिक कार्यों से धन साधन को प्राप्त करता है और उन साधनों का प्रयोग उपभोग उसके परिवार के अधीनस्थ व्यक्ति सभी करते हैं किन्तु वे उन धन-सम्पत्ति आदि का प्रयोग भी करते हुए भी अधीनस्थ होने के कारण उस पाप से बचे रहते हैं; पाप रूपी दोष घर के स्वामी को ही लगता है।

प्रश्न ६१ :- कभी किसी का प्राण झूठ बोलने से बचता हो तो भी कहीं बचाना चाहिए !

उत्तर :- हमेशा सत्य के आश्रय से ही किसी का प्राण बचाना चाहिए। यदि कोई किसी के प्राण बचाने हेतु झूठ बोलता है तो प्राण बच

www.thearyasamaj.org

जायेगा किन्तु उस झूठ का फल पाप दुःख भी भोगना पड़ेगा।

जैसे कोई चिकित्सक अपने मरणासन्न रोगी के समक्ष कहता है कोई बात नहीं आप निश्चिंत रहो आप ठीक हो जाओगे और रोगी के परिवार जनों से कहता है मृत्यु निकट है। बाद में वह रोगी मर जाता है ऐसी परिस्थिति में उपस्थित रोगी के परिजनों को यह पता लगेगा कि चिकित्सक झूठ बोलता है और उस पर से परिजनों का विश्वास उठ जायेगा।

कालान्तर में उन्हीं में से कोई परिजन रोगी-अस्वस्थ होकर उसी चिकित्सक के पास जाता है। पुनः उस चिकित्सक के द्वारा सान्त्वना देने पर अब उसको चिकित्सक की बात पर विश्वास नहीं होता और अपने स्वास्थ्य के विषय में कोई धैर्य नहीं रख पाता है।

प्रश्न ६२ :- वे कौन सी परिस्थितियाँ हैं जिनमें झूठ बोलना पुण्य हो सकता है।

उत्तर :- ऐसी कोई परिस्थिति नहीं है जहाँ झूठ बोलना पुण्य हो सकता है। सर्वत्र अज्ञानता, विवशता, निर्बलता आदि कारण हो सकते हैं जिससे व्यक्ति झूठ बोलने को बाधित होता है। अतः इन कारणों को हटाने का प्रयास करना चाहिए। तात्कालिक रूप से कोई झूठ के प्रयोग से दण्ड, परिहास, उपहास से बच सकता है किन्तु फल बुरा ही होगा क्योंकि झूठ, छल-कपट का फल हमेशा दुःखदायी ही होता है।

प्रश्न ६३ :- लोक में तो देखते हैं कि स्वामी सेठ अपने सेवकों का जितना पारिश्रमिक होता है उससे कम अधिक दे देता है। इसी प्रकार ईश्वर भी किसी को अपनी ओर से बिना ही कर्म के सुख दुख दे देगा ।

उत्तर :- लोक में जो विना ही कर्मों के जो किसी व्यक्ति को सुख/सुखसाधन या दुख/दुखसाधन दिये जाते हैं वहाँ पर दाता के मन में राग या द्वेष होता है। बिना राग के कोई व्यक्ति किसी को विना कर्मों के सुख नहीं देता और विना द्वेष के किसी को विना कामों के दुख नहीं देता।

उदाहरण :- आजकल के रागी माता पिता द्वारा अयोग्य (आदर्श दिनचर्या, व्यायाम, ईश्वरोपासना, यज्ञ,स्वाध्याय, सत्संग, सेवाभावना, विनम्रता, पुरुषार्थ, त्याग-तप, देशभक्ति, धार्मिकता आदि रहित) बच्चों को धन सम्पत्ति प्रदान करना राग का ही द्योतक है। लौकिक व्यक्ति की

www.thearyasamaj.org

तरह ईश्वर रागी या द्वेषी नहीं है न पक्षपाती है। यदि किसी को बिना कर्मों के सुख-दुख देता तो पक्षपाती अन्यायकारी हो जाएगा और ऐसे व्यक्ति को ईश्वर नहीं कहा जाएगा।

प्रश्न ६४ :- आजकल प्रतिदिन हजारों की संख्या में गर्भ में ही उत्पन्न होने वाले शिशुओं को मारा जा रहा है तो क्या यह गर्भ में आने वाले जीव के कर्मों का फल है या माता-पिता का?

उत्तरः- गर्भ का धारण माता-पिता की इच्छा से होता है और गर्भपात भी उन्हीं की स्वतंत्र इच्छा से होता है अतः गर्भपात के कारण होने वाले भयंकर पाप के अपराधी गर्भपात कराने वाले, करने वाले तथा सहमति देने वाले सभी हैं। गर्भधारण करने वाले शिशु का इसमें कोई भी कर्म या कर्मफल नहीं है। न ईश्वर की ओर से कोई प्रेरणा या विधान है कि गर्भपात कराया जाये। अपितु गर्भपात का निषेध है।

प्रमाण-

मा नो वधीरीन्द्र...माण्डा मा नो मघवञ्छक्र...।।

(ऋग्वेद १/७/१६/८)

भावार्थ- हे परमेश्वर! हम अपने गर्भों का विनाश न करें। बल्कि उनकी अच्छी प्रकार से रक्षा करें।

प्रश्न ६५ :- समाज में ऐसा सिद्धान्त प्रचलित है कि जो कुछ सृष्टि में हो रहा है वह ईश्वर की इच्छा से, ईश्वर की प्रेरणा से, ईश्वर-के द्वारा ही हो रहा है। जीवात्मा तो एक साधन मात्र है क्या यह सिद्धान्त सत्य है?

उत्तरः- नहीं ऐसा मानना ठीक नहीं है। यदि इस सिद्धान्त को ठीक मान लिया जाए तो संसार में जो कुछ अच्छा-बुरा हो रहा है उस सब का उत्तरदायी ईश्वर होगा। मनुष्य का तो सारा दायित्व ही समाप्त हो जाएगा, न जीवात्मा कर्त्ता होगा न भोक्ता, फिर तो समाज में न्याय व्यवस्था की भी आवश्यकता नहीं रहेगी।

यथार्थ सिद्धान्त तो यह है कि जीवात्मा इच्छा, राग, द्वेष, प्रयत्न आदि गुणों से युक्त एक स्वतन्त्र चेतन तत्त्व है और वह स्वतन्त्र कर्त्ता भी है। वह अपनी इच्छा, प्रयत्न से समस्त कर्मों को करता है और उन कर्मों के प्रति स्वयं ही उत्तरदायी है। वेद आदि सत्य शास्त्रों में जीवात्मा

www.thearyasamaj.org

को ही द्रष्टा, श्रोता, कर्त्ता तथा फलों का भोक्ता बताया गया है।

प्रमाण–

एष हि द्रष्टा, स्प्रष्टा, श्रोता, घ्राता, रसयिता, मन्ता, बौद्धा, कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः। (प्रश्नोपनिषद् ४/९)

यदि मनुष्य को ईश्वर के आदेशानुसार कार्य करने वाला साधन मात्र मान लिया जाये तो ऐसी स्थिति में बुरे कर्मों का फल दुःखादि ईश्वर को ही मिलना चाहिए क्योंकि ईश्वर ही कर्त्ता है, उसी ने जीव से कर्म कराये हैं, किन्तु ऐसा मानना किसी को भी अभीष्ट नहीं होगा। इसलिए यह सिद्धान्त ठीक नहीं है कि सब कुछ ईश्वर की इच्छा से होता है।

****

कर्मफल से सम्बन्धित कुछ प्रश्नों को उठाकर उनका समाधान संक्षेप रूप में इस पुस्तिका में किया गया है लगभग इतने ही गूढ़ और सूक्ष्म विषयक प्रश्न और अवशिष्ट हैं जिनका समाधान द्वितीय भाग में करेंगे। सुविज्ञजनों से निवेदन है कि उन्हें किसी भी विषय में अप्रमाणिक बात लिखी गयी प्रतीत हो तो उनसे निवेदन है कि उस विषय में अपना पक्ष प्रमाणपूर्वक लिखें, हम उन पर विचार करके सत्य का ग्रहण करेंगे और असत्य को छोड़ेंगे।

कर्मफल विवरण प्रथम भाग समाप्त

इस पुस्तक के प्रकाशन एवं वितरण का मुख्य सहयोग
श्री नलिनचंद्र जी मोदी न्यासी,
वानप्रस्थ साधक आश्रम, आर्यवन, रोजड़ (गुजरात)ने प्रदान किया है।

www.thearyasamaj.org

कर्म सिद्धान्त विषयक सूक्तियाँ

फलं धर्मस्य चेच्छन्ति धर्मं नेच्छन्ति मानवाः।
फलं पापस्य नेच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः।। (नीतिकार)

भावार्थः- मनुष्य की कैसी विचित्र धारणा बन जाती है कि वह अपने जीवन में सुख, शान्ति, सन्तोष, निर्भीकता, स्वतन्त्रता आदि गुणों को तो प्राप्त करना चाहता है। किन्तु इन गुणों को प्राप्त कराने वाले धर्म= वेदादि सत्य शास्त्रों में वर्णित कर्त्तव्य कर्मों का आचरण नहीं करना चाहता है। इसके विपरीत जीवन में दुःख, अशान्ति, असन्तोष, भय, बन्धन आदि अनिष्टों को नहीं चाहता है किन्तु इन सब बुराईयों के कारण पाप, अधर्म की योजना बनाकर आचरण करता है।

यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति यद्वाचा वदति तद् कर्मणा करोति।
यद् कर्मणा करोति तद् अभि सम्पद्यते।। (शतपथ ब्राह्मण)

भावार्थः- शरीर, मन, इन्द्रियों का स्वामी जीव जैसा मन से विचार करता है वैसा ही वाणी से बोलता है, जैसा वाणी से बोलता है वैसा ही आचरण करता है और जैसा आचरण करता है उसी के अनुरूप वह सुख दुःख फल, परिणाम, प्रभावों को प्राप्त करता है अर्थात् सुख दुःख का मूल उत्पादक वह स्वयं ही है।

कुछ व्यक्ति ऐसा मानते हैं कि इस जन्म में वही मिलता है जो पिछले जन्म में किया था तथा कुछ व्यक्ति ऐसा मानते हैं इस जन्म में वही मिलता है जो इसी जन्म में किया जाता है। वस्तुतः ये दोंनो ही मान्यताएँ मिथ्या हैं। सत्य सिद्धान्त यह है कि पिछले जन्म के कर्म (प्रारब्ध/भाग्य) और वर्तमान जन्म के कर्म ये दोंनो ही इस जीवन में परिणाम, प्रभाव और फल प्रदान करते हैं।

www.thearyasamaj.org

प्रकाशित एवं वितरित पुस्तक-पुस्तिकाएँ, कैलेण्डर, पत्रक आदि मुख्य साहित्य की सूची

१. सत्यार्थ प्रकाश (गुजराती)
२. ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका (गुजराती)
३. उपदेश मंजरी (गुजराती)
४. 'आत्म कथा'- म.दयानन्द (गुज.)
५. योगमीमांसा (हिन्दी, गुज., मल., कन्नड, उडिया, तेलुगु, अंग्रेजी)
६. सरल योग से ईश्वर साक्षात्कार (हिन्दी, गुजराती, तेलगु, अंग्रेजी)
७. योगदर्शनम् व्यासभाष्य व्याख्या सहित
८. ब्रह्म विज्ञान (हिन्दी, गुजराती)
९. अध्यात्म सरोवर (हिन्दी, गुजराती)
१०. आस्तिकवाद (गुजराती)
११. योग दर्शनम् (हिन्दी) सूत्रार्थ भावार्थ
१२. तत्त्वज्ञान (हिन्दी, गुजराती)
१३. क्रियात्मक योगाभ्यास (हिन्दी, गुजराती, अंग्रेजी)
१४. ईश्वर सिद्धि (हिन्दी, अंग्रेजी)
१५. आर्यों के सोलह संस्कार (हिन्दी, गुज.)
१६. सचित्र दार्शनिक निबंध (हिन्दी, गुज.)
१७. विवेक वैराग्य श्लोक संग्रह (हिन्दी, गुज.)
१८. पीडित गौमाता के उपकार (हिन्दी, गुजराती)
१९. सत्योपदेश (हिन्दी)
२०. दु:ख निवारणना भ्रामक उपायो (गुज.)
२१. यजु. कठोपनिषद (गुजराती)
२२. आस्तिकवाद (गुजराती)
२३. मेरा संक्षिप्त जीवन परिचय
२४. अष्टांग योग (हिन्दी, गुजराती)
२५. दैनिक संध्योपासना विधि-अर्थ सहित
२६. दैनिक यज्ञ विधि-अर्थ सहित (गुज.)
२७. योग दर्शन व्यासभाष्य सहित (गुज.)
२८. आपणां संप्रदायो (गुजराती)
२९. पर्यावरण प्रदूषण (हिन्दी, गुज., अं.)
३०. प्रेरक वाक्य (हिन्दी, गुजराती)
३१. आसन-व्यायाम (हिन्दी, गुजराती)
३२. सत्यार्थ प्रकाश की तेज धारायें (हिन्दी, गुजराती)
३३. अद्वैतवाद-एक विवेचन
३४. स्नातकों का परिचय तथा उपलब्धियाँ
३५. आयुर्वेदिक सरल उपचार
३६. भगवत्कथा (गुजराती)
३७. वैदिक वीर गर्जना (गुजराती)
३८. वैदिक भक्ति
३९. मनुस्मृति (गुजराती)
४०. ब्रह्ममेधा (हिन्दी)
४१. त्रिदेव निर्णय (गुजराती)

एवं कैलेण्डर तथा पत्रक

मुख्य वितरक

रणसिंह आर्य

द्वारा डॉ. सद्गुणा आर्या

"सम्यक्", गांधीग्राम, जूनागढ,-३६२००१